# VII मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों के पारस्परिक संबंध विषयक मामले

7.1 केंद्रीय बैंकिंग समय के साथ-साथ राजनैतिक एवं आर्थिक शक्तियों की अनुक्रिया में विकसित होने वाली प्रक्रिया है। सिद्धांततः केंद्रीय बैंक, जो मौद्रिक नीति बनाता है तथा सरकार, जो राजकोषीय नीति के लिए ज़िम्मेदार है, के बीच, व्यापक आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, प्रभावी समन्वय आवश्यक है।

7.2 मौद्रिक-राजकोषीय समन्वय को क्रियान्वित करने के लिए हाल के वर्षों में अनेक देशों में सरकारों ने स्वयं को अनुशासित करने हेतु राजकोषीय जवाबदेही संबंधी कानून, जिनमें अन्य बातों के अतिरिक्त केंद्रीय बैंक से ऋण लेने की प्रवृत्ति पर रोक तथा उधार सीमा नियत करते हुए मुद्रास्फीति के स्थिरीकरण हेतु मौद्रिक नीति को अधिक नम्य एवं स्वायतः बनाने आदि से संबंधित मदों पर प्रावधान किए गए हैं। स्वतंत्र केंद्रीय बैंक की आवश्यकता की उद्घोषणा से इसको और बल मिला है । महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ ऐसे देशों ने, जिन्होंने अतिमुद्रास्फीति की समस्या झेली है, प्रायः केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता हेतु कानून बनाए हैं।

7.3 हालांकि रिज़र्व बैंक की स्थापना एक निजी स्वामित्व एवं प्रबंध वाले निकाय के रूप में हुई थी, परंतु वस्तुतः यह सरकारी निदेशों के अंतर्गत कार्य करता था। इस संबंध में, उल्लेखनीय है कि केंद्रीय निदेशक मंडल के सदस्य घरेलू हितों का प्रतिनिधित्व करते थे तथा ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा एवं रिज़र्व बैंक तथा बैंक ऑफ इग्लैंड की नीतियों में टकराव न हो, यह सुनिश्चित करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा गवर्नर की नियुक्ति की जाती थी। वास्तव में रिज़र्व बैंक के बोर्ड को अपनी मुद्रा एवं विदेशी मुद्रा विनिमय नीतियों के संबंधी निर्णयों का स्वरूप ब्रिटिश सरकार की नीतियों के अनुसार ढालने के लिए विवश होना पड़ता था ।

7.4 स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1949 में रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीकरण के बाद से मौद्रिक-राजकोषीय संबंधों ने एक विकासशील देश की परंपरा के अनुसार मार्ग अपनाया है। योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया की शुरुआत से राजकोषीय नीति ने निभावपरक मौद्रिक एवं अनुकूल ऋण प्रबंध नीति की सहायता से भारी सार्वजनिक निवेश के माध्यम से आर्थिक वृद्धि प्रारंभ करने की ज़िम्मेदारी संभाली। इस विषय में इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सार्वजनिक ऋण के स्तर, संरचना एवं लागत के निर्धारण की प्रक्रिया में राजकोषीय, मौद्रिक एवं ऋण प्रबंध नीतियों का परस्पर घनिष्ठ संबंध रहा है। सार्वजनिक ऋण का बाज़ार दर से कम दर पर वित्तपोषण करने का औचित्य यह है कि सार्वजनिक परियोजनाओं की उत्पादन पूर्व निर्माणावधि बहुत लंबी होती है तथा जिसे संप्रभुता प्राप्त उधाकर्ता होने के कारण सरकार कम ब्याज दर पर ऋण लेने में समर्थ होनी चाहिए। हालांकि इससे सरकार ऋण की लागत में कमी कर सकी, तथापि इससे व्यापक आर्थिक नीति लक्ष्यों की प्राप्ति में मौद्रिक नीति उपकरणों की क्षमता घट गई। सन् 1980 के बाद के दशक के अंत तक राजकोषीय मौद्रिक मुद्रास्फीति का परस्पर संबंध उत्तरोत्तर स्पष्ट नज़र आने लगा जिसके कारण राजकोषीय घाटे के मौद्रीकरण से उत्पन्न मौद्रिक विस्तार से मुद्रास्फीति बढ़ी, इसके फलस्वरूप सरकारी खर्चों में राजस्व की प्राप्ति की अपेक्षा ज़्यादा वृद्धि हुई, जिससे बजट घाटा और बढ़ा। उसके रक्षात्मक उपाय के रूप में बजट असंतुलन के मौद्रिक दुष्प्रभावों को सीमित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने बैंकों के आरक्षित अनुपातों में वृद्धि की जिससे बैंकेतर संस्थाओं के मुकाबले बैंकों की लाभप्रदता की हानि हुई। चूँकि पूर्वाधिकृत संसाधनों में वृद्धि सरकारी जरूरतों की पूर्ति हेतु अपर्याप्त थी, अतः सरकार को राजकोषीय सुविधाएं देकर सरकार को आबद्ध बाज़ार के बाहर से ऋण लेना पड़ा। विकास प्रक्रिया बनाए न रखे जा सकने के कारण 1990 के बाद के दशक में राजकोषीय, मौद्रिक एवं ऋण प्रबंधक नीतियों में सुधारों की बहुमुखी रणनीति बनाने की आवश्यकता हुई ताकि रिज़र्व बैंक को लिखत प्रयुक्त करने की ज़्यादा स्वाधीनता दी जा सके।

7.5 उपर्युक्त पृष्ठभूमि में इस अध्याय के शेष भाग को निम्नानुसार व्यवस्थित किया गया है। इसके भाग I में मौद्रिक-राजकोषीय पारस्परिक संबंधों के विकास , सिद्धांत एवं विश्लेषणात्मक संरचना का वर्णन किया गया है। भाग II में इस संबंध विभिन्न देशों में प्रचलित व्यवहारों की चर्चा की गई है।इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि यद्यपि विभिन्न देशों मौद्रिक राजकोषीय संबंधों के तौर तरीके अलग-अलग हो सकते हैं तथापि सामान्य मान्यता यही है कि बाज़ार में विश्वास पैदा करने तथा मौद्रिक स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति में परस्पर संगति तथा अनुपूरकता आवश्यक है। वर्ष 1935-2003 अवधि में मौद्रिक और राजकोषीय परस्पर संबंधों के विकास की प्रक्रिया को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है, जिसका वर्णन भाग III में किया गया है। प्रथम चरण में प्रारंभिक काल (1935-1930) का समावेश है, दूसरे चरण (1950-1991) में राजकोषीय सक्रियता एवं मौद्रिक निभाव का वर्णन किया गया है

तथा तीसरे चरण में व्यापक आर्थिक संकट तथा तदनुवर्ती वित्तीय क्षेत्र सुधारों (1991-2003) का चित्रण किया गया है। रिज़र्व बैंक द्वारा लोक ऋण का प्रबंध मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है। तदनुसार भाग IV में सार्वजनिक ऋण प्रबंध रणनीति के परिवर्तन सहित लोक ऋण प्रबंध की विकास यात्रा का वर्णन निष्क्रिय प्रबंधन से लेकर अधिक सक्रिय ऋण प्रबंध रणनीति V में 2003-05 अवधि में राजकोषीय विधान, मौद्रिक प्रबंध तथा किया गया है जिसमें परिवर्तन का समावेश है ऋण प्रबंध पर चर्चा की गई है। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध की पृष्ठभूमि में मौद्रिक-राजकोषीय समन्वय का वर्णन भाग VI में किया गया है। भाग VII में भारत में मौद्रिक-राजकोषीय संबंधों का आकलन तथा भाग VIII में उपसंहार के तौर कुछ मुद्दों पर चर्चा की गई है।

## I. मौद्रिक राजकोषीय परस्पर संबंध: विकास, सिद्धांत एवं विश्लेषणात्मक संरचना

### विकास

7.6 केंद्रीय बैंकों का जन्म विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुआ है जो न सिर्फ उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों को प्रभावित करती हैं, बल्कि उनकी परिचालन शैली पर भी प्रभाव डालती हैं। यद्यपि केंद्रीय बैंकों की परिचालन प्रक्रिया मे ंअंतर हो सकता है, परंतु सभी जगह वे मौद्रिक नीति के परिचालन के लिए उत्तरदायी होते हैं। इस संदर्भ में मौद्रिक सिद्धांतों में परिष्कार ने केंद्रीय बैंकिंग के सिद्धांत के विकास में बहुत भारी योगदान किया है।

7.7 प्रारंभिक केंद्रीय बैंकों (स्वीडन और इग्लैंड) से आधुनिक केंद्रीय बैंकों द्वारा निष्पादित कार्यों किए जाने वाले को करने की उम्मीद नहीं की गई थी, बल्कि उनकी स्थापना सरकारों के बजट घाटे की पूर्ति के लिए की गई थी। विधि द्वारा केंद्रीय बैंकों को नोट निर्गम का एकाधिकार प्रदान करने से इस कार्य मेंसुविधा हो गई । मुद्रा सृजन की शक्ति के प्रत्यायोजन से उस मुद्रा के मूल्य की रक्षा की ज़िम्मेदारी भी आ पड़ी। समय के साथ-साथ मुद्रा निर्गम के एकाधिकार तथा साथ ही सरकार का बैंकर होने के विशेषाधिकार से ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि जहाँ बैंक का स्वामी (सरकार) ही उसका सबसे बड़ा कर्जदार बन गया। इससे सरकारों में अपनी ऋणग्रस्तता को अपने वित्तपोषण के लिए प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ी। परंतु केंद्रीय बैंक द्वारा उपलब्ध कराए गए ऋण से केंद्रीय बैंक द्वारा जारी मुद्रा का अवमूल्यन हुआ। हालांकि मुद्रा के अवमूल्यन से सरकार के वास्तविक ऋण में कमी हुई, परंतु इससे मुद्रा की क्रयशक्ति के ह्रास द्वारा आर्थिक परिवेश में अनिश्चितता पैदा हो गई। इस प्रकार केंद्रीय बैंक की सरकार का बैंकर की भूमिका से इसके मुद्रा के मूल्य के अनुरक्षण के प्रमुख कार्य में बाधा आई । इन परिस्थितियों से केंद्रीय बैंक के मौद्रिक नीति लक्ष्यों एवं सरकार का बैंकर होने की भूमिका में टकराव पैदा हुआ।

7.8 प्रमाणों से यह संकेत मिलता है कि सरकारों द्वारा असीमित केंद्रीय बैंक ऋण का प्रयोग औपनिवेशिक विस्तार, युद्धों एवं द्वितीय विश्व युद्धोत्तर अर्थव्यवस्थाओं के नवनिर्माण के वित्त पोषण के लिए किया गया (जाधव, 2003) । इस काल में सरकार के घाटे के वित्तपोषण से उत्पन्न दबाव से मुद्रास्फीति को बढ़ावा नहीं मिला क्योंकि तब अर्थव्यवस्थाएं अपनी वर्तमान क्षमताओं से नीचे कार्य कर रही थीं। परंतु निरंतर उच्चतर क्षमता के उपयोग से राजकोषीय नीति प्रेरित प्रगति प्रक्रिया ने आपूर्ति संकटों जैसे तेजी से बढ़ते अंतरराष्ट्रीय तेल मूल्यों एवं वास्तविक उत्पादकता संबंधी आघातों से बाधा आई। इससे आर्थिक गत्यावरोध उत्पन्न हुआ तथा साथ ही सभी देशों में मुद्रास्फीति में वृद्धि हुई जिससे 1970 के बाद के दशक में मुद्रागत अपस्फिति की स्थिति पैदा हो गई । तदनुसार शैक्षिक क्षेत्रों तथा नीति निर्माता क्षेत्रों में दोनों केंद्रीय बैंक की भूमिका एवं लक्ष्यों की पुनरीक्षा की गई तथा इसके फलस्वरूप केंद्रीय बैंक के लक्ष्यों में सरकार के वित्तपोषण के लिए मुद्रा नीति के रुझान पर की तुलना में मूल्य स्थिरता को वरीयता दी गई। विभिन्न सरकारों एवं केंद्रीय बैंकों ने अपनी नीतियों की प्राथमिकताओं का पुनर्निधारण किया तथा सरकारों को आर्थिक विकास दर में वृद्धि करने तथा केंद्रीय बैंकों को मूल्य स्थिरता निश्चित करने की भूमिका दी गई। परंतु चूंकि समाज की दृष्टि से वे दोनों ही लक्ष्य वांछनीय हैं, अतः सन 1980 दशक के मध्य से आर्थिक नीति की दोनों शाखाओं (राजकोषीय एवं मौद्रिक) के बीच बेहतर समन्वय पर जोर दिया गया।

### व्यापक आर्थिक सिद्धांत

7.9 केंज़ ने एक ऐसे मौद्रिक सिद्धांत का प्रतिपादन करके, जो केंद्र में एक केंद्रीय बैंक को रखकर पूर्णतः विकसित बैंकिंग क्षेत्र के इर्द - गिर्द घूमता है, स्थूल आर्थिक विचारधारा में क्रांति ला दी (केंज़, 1936)। आर्थिक प्रणाली की केन्ज़ की मान्यता में आर्थिक प्रणाली एक स्वनियंत्रित निकाय नहीं है बल्कि वह कारणात्मक कड़ियों का जटिल समुच्चय है, जिससे नीति निर्माता निर्देशित करने का प्रयास करता है। इस पृष्ठभूमि में जहां राजकोषीय नीतिगत उपायों को राष्ट्रीय सरकारों का अधिकार क्षेत्र माना गया, वहीं अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा में ले जाने के लिए मौद्रिक उपायों का अधिकार केंद्रीय बैंक को दिया गया ।

7.10 प्राचीन अर्थशास्त्रियों के इस दृष्टिकोण से कि पैसा सिर्फ एक पर्दा है, अलग हटते हुए केंज़ ने ब्याज दर एवं अर्थव्यवस्था में निवेश के स्तर के बीच के संबंधों पर जोर देते हुए अर्थव्यवस्था के मौद्रिक

एवं वास्तविक क्षेत्रों का समेकन किया । उसने तर्क दिया कि केंद्रीय बैंक मुद्रा के सृजन द्वारा ब्याज दर में परिवर्तन ला सकते हैं जिसके कारण फर्मों के दीर्घावधि निवेश की लाभप्रदता बदल सकती है तथा वास्तविक क्षेत्र की गतिविधियों के स्तर पर प्रभाव पड़ सकता है। चूंकि केंद्रीय बैंक विकास कार्यों के प्रत्यक्ष वित्तपोषण या फिर सरकार के घाटे के वित्तपोषण द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा सृजन कर सकता है, अतः मौद्रिक-राजकोषीय कड़ी केन्ज़ के मौद्रिक सिद्धांत में अंतर्निहित थी। परंतु केन्ज़ ने यह सुझाव दिया कि मुद्रा मांग, ब्याज दरों एवं आर्थिक गतिविधि के स्तर के बीच का संबंध अस्थिर है तथा संपत्ति धारकों तथा भविष्य के प्रति उनकी आशंकाओं से इसमें तीव्र परिवर्तन आते हैं।

7.11 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पहले दो दशकों में केन्ज़ की विचार धारा ने यह तर्क दिया कि उपभोक्ताओं एवं फर्मों के व्यय का निर्णय प्रायः आस्तियों पर आय की दर पर निर्भर नहीं करते, बल्कि वे प्रत्याशागत परिवर्तियों के प्रति ज़्यादा संवेदनशील होते हैं। केंज़ की यह अति अमौद्रिक व्याख्या केंद्रीय बैंकों के लिए परंपरागत बुद्धिमत्ता बन गई। परिणामतः राजकोषीय नीति संबंधी केंद्रीय कार्यों का केंद्र बन गई तथा मौद्रिक नीति को हाशिए पर धकेल दिया गया। इस अवधि में राजकोषीय नीति के उत्कर्ष का आंशिक कारण, केन्ज़ियन नीति के इस निर्धारण कि समग्र मांग की कमी की समस्या को स्फीतिकारक राजकोषीय नीति से निपटा जा सकता है, की स्वीकृति के अतिरिक्त 1930 के बाद के दशक की महा मंदी तथा द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर नवनिर्माण की प्रक्रिया थी।

7.12 1970 के बाद में दशक के प्रारंभ में हुई घटनाओं ने केन्ज़ के सिद्धान्तों को कटघरे में खड़ा कर दिया : निश्चित विनिमय दर प्रणाली का विघटन, प्रथम ओपेक (ओपीइसी) तेल संकट, खराब पैदावार एवं फसलों की बर्बादी तथा वियतनाम युद्ध के दुष्प्रभावों के संयुक्त प्रभाव से अमरिका में मुद्रास्फीति दर में वृद्धि हुई तथा उच्च बेरोजगारी आई। अन्य कई देशों की अर्थव्यवस्थाएं भी समांतर रूप से डगमगा गईं। यह अपस्फीतिकारी स्थिति अल्पावधिक फिलिप्स वक्र की इस परंपरागत मान्यता से टकराता हुआ लगा कि उच्चतर मुद्रास्फीति की लागत पर निम्न बेरोजगारी प्राप्त की जा सकती है। बाद के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि दीर्घावधि में मुद्रास्फीति एवं बेरोजगारी का अन्योन्याश्रित संबंध होने का कोई सिद्धांत लागू नहीं होता तथा इससे मुद्रास्फीति के विरुद्ध ज़्यादा निश्चयपूर्वक संघर्ष करने का मार्ग खुला।

7.13 1970 के बाद के दशक में नई पीढ़ी के अर्थशास्त्रियों ने यह मान कर कि बाज़ार के सहभागियों की प्रत्याशा तर्कसंगत होती है तथा बिना कोई आग्रह किए बाज़ार स्वच्छता के दृष्टिकोण को अपनाते हुए यह तर्क दिया कि प्रत्याशित नीतिगत उपायों का कोई महत्व नहीं होता तथा केवल अप्रत्याशित नीतिगत उपायों से ही कोई असली और वह भी अस्थायी असर पड़ सकता है। बाज़ार सहभागियों के ऐसे आश्चर्यों की उत्पत्ति से बचाने के लिए यह तर्क दिया गया कि स्थिरीकरण की नीति विभेदकारी नहीं होनी चाहिए क्योंकि इससे बाज़ार में विकृति आती है। अतः, नीतिगत प्रयोजनों के लिए नियम आधारित मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों की संस्तुति की गई, जो प्रत्याशागत बेमेलता एवं परिणामों की अनिश्चितता का निवारण करने में सहायक होती है।

7.14 तर्कसंगत प्रत्याशागत प्रतिमानों ने भावी मुद्रा नीति के सिद्धांतों एवं व्यवहारों पर काफी प्रभाव डाला । केन्ज मत के अर्थशास्त्रियों ने सिद्ध किया कि तर्कसंगत प्रत्याशा के सिद्धांत को सत्य मान कर भी, प्रत्याशित नीति उपायों से वास्तविक प्रभाव पड़ता है, बशर्ते बाज़ार समाशोधन मान्यता में ढ़ील दी जाए (फिशर, 1977 एवं फेल्पस और टेलर, 1977)। और आगे किए गए अनुसंधान ने इस मत को रेखांकित किया कि बाज़ार स्थिरीकरण की भूमिका में प्रभावी होने लायक पर्याप्त स्फूर्ति नही हैं तथा इस पर बाह्य राजनैतिक विचारों का भारी प्रभाव होता है (डार्नबुश एवं फिशर, 1990)। अतः व्यापक आर्थिक स्थिरीकरण की ज़िम्मेदारी की भूमिका मौटे तौर पर केंद्रीय बैंक को दे दी गई तथा यह माना गया कि राजकोषीय नीति केवल एक दूसरे मांग संकट को दर्शाती है, जिसका मौद्रिक नीति को निराकरण करना चाहिए। परिणामतः मौद्रिक नीति का महत्व बढ़ा जिससे कई मामलों में राजकोषीय घाटे के प्रति लापरवाह सरकारों पर लगाम लगाने के लिए स्वतंत्र केंद्रीय बैंक की स्थापना करने जैसे संस्थागत परिवर्तन किए गए। इस विचारधारा ने पूर्ववर्ती जर्मनी के बुडेस बैंक की कार्यप्रणाली को प्रभावित किया तथा यूरोपीय केंद्रीय बैंक की नींव रखी।

7.15 सन 1980 के बाद के दशक में क्रीड़ा सिद्धांत (गेम थ्योरी) के कार्यान्वयन से स्थिरीकरण नीति के सिद्धांत को और बल मिला। इस व्यवस्था में आर्थिक नीति की दो शाखाओं (राजकोषीय और मौद्रिक) में संघर्ष के रूप में असहयोगी व्यवहार से समाज की दृष्टि से कम-अभीष्टतम परिणाम मिले एवं समाज-कल्याण का ह्रास हुआ। परिणामतः सामाजिक दृष्टि से वांछनीय मूल्य स्थिरीकरण सहित आर्थिक वृद्धि के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सन 1980 के बाद के दशक के मध्य से बेहतर मौद्रिक राजकोषीय समन्वय पर जोर दिया जा रहा है।

[1] स्थायित्व की नीति में कई कठिनाइयां हैं जो लिखतों तथा लक्ष्यों के बीच परस्पर संबंध से पैदा हुई हैं क्योंकि एक लक्ष्य को पाने की कोशिश में दूसरा हाथ से छूट जाता है। इस संदर्भ में, टिंबरजन ने एक विशेष लक्ष्य को पाने के लिए केवल एक लिखत के चयन की वकालत की है, अर्थात् लक्ष्यों तथा लिखतों की संख्या समान होनी चाहिए।

## मौद्रिक राजकोषीय समन्वय : सैद्धान्तिक आधार

7.16 चूंकि समन्वय की समस्या के मूल में उपकरणों का अभाव है, अतः टिंबरजन के परंपरागत लक्ष्य एवं साधनगत दृष्टिकोण मौद्रिक-राजकोषीय समन्वय के लिए एक उपयोगी संरचना उपलब्ध करता है (टिंबरजन, 1952)[1]। यदि सरकार के पास पर्याप्त संख्या में राजकोषीय साधन उपलब्ध हैं तो सरकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने कार्यों के लिए केंद्रीय बैंक के कार्यों के साथ समन्वय करे। इस विषय में, सरकार एवं केंद्रीय बैंक दोनों के पास उपलब्ध साधनों की संख्या जानना आवश्यक है तथा यह अर्थव्यवस्था के समुचित प्रतिमान के चयन तथा लक्ष्यों की सही सूची पर निर्भर करता है। यदि राजकोषीय उपकरण सक्षम हैं तो वे पर्याप्त हो सकते हैं, बशर्ते मौद्रिक नीति का राजकोषीय नीति के साथ पूर्ण समन्वय किया जाए क्योंकि समन्वय के अभाव में कम-अभीष्टतम परिणाम प्राप्त होते हैं (बाक्स VII-1)। परंतु लेटिन अमेरिकी संदर्भ में इसका उलटा (यथा अर्जेंटीना) उदाहरण देखने को मिला जहां अति उच्च मुद्रास्फीति के कारण वास्तविक खपत के स्तरों की सुरक्षा करने के लिए मजदूरी एवं वेतनों का सूचीकरण करने जैसे राजकोषीय उपाय करने पड़े । इससे मजदूरी - मूल्य - उच्च चक्र की स्थिति पैदा हुई तथा अर्थव्यवस्था में स्थायी अति उच्च मुद्रास्फीति की समस्या उत्पन्न हो गई। इस प्रकार राजकोषीय दृष्टि से मुद्रास्फीति को बेहतर निभाव के रूप में मौद्रिक राजकोषीय समन्वय के कारण निम्नस्तरीय परिणाम मिले।

7.17 अनुसंधान की अन्य धारा यह उल्लेख करती है कि मौद्रिक राजकोषीय समन्वय महत्वपूर्ण[2] नहीं है। अग्रमुखी नव केन्जियन प्रतिमानों में मौद्रिक नीति के लिए राजकोषीय नीति की प्रासंगिकता सिर्फ यहाँ तक सीमित है कि राजकोषीय नीति एक मांग संकट का प्रतिनिधित्व करती है जिसका मौद्रिक प्राधिकारी को प्रतिकार करना चाहिए। दीर्घावधि में राजकोषीय समेकन से न्यूनतर संतुलनकारी वास्तविक ब्याज दर की स्थिति उत्पन्न होगी (टेलर, 1995)। ऐसे परिवेश में मुद्रास्फीति को लक्ष्य के समीप रखने के लिए सांकेतिक ब्याज दर में कटौती करनी अपेक्षित होगी। अतः राजकोषीय नीतियों के परिवर्तनों से मौद्रिक नीति समायोजन की आवश्यकता पैदा होगी, परंतु राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों को मिश्रण व्यापक से आर्थिक परिणामों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

### बॉक्स VII.1
### मौद्रिक आर राजकोषीय समन्वय के मुद्दे

राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के समन्वय में कई विशेषताएं हैं । पहली, उनकी परस्पर क्रियाएं सकल मांग को प्रभावित करती हैं और अल्पावधि में उत्पादन तथा ब्याज दरों का निर्धारण करती हैं । दूसरी, खुली अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, कठोर मौद्रिक नीति के कारण ऊंची ब्याज दरें जहां व्यापार किए जाने वाले माल की उत्पादन लागत पर विपरीत प्रभाव डाल सकती हैं, वहीं राजकोषीय उपाय टैरिफ, कोटा तथा सीमा-शुल्क के माध्यम से ऐसी वस्तुओं के उत्पादकों पर पड़ने वाले बोझ को समाप्त कर सकते हैं। तीसरी, मौद्रिक राजकोषीय समन्वय, बाण्ड तथा सरकारी घाटे को धन उपलब्ध कराने में आदर्श संयोजन सुनिश्चित करता है, क्योंकि केंद्रीय बैंक क खुला बाज़ार परिचालन यह निर्धारित करता है कि कितना धन/ बांड उपलब्ध करवाया जाना है। चौथी, राजनीतिक दबाव समन्वय कार्य थोप सकता है क्योंकि, प्रजातंत्र में सरकार को आर्थिक नीति के उद्देश्य निर्धारित करने का खुला जनादेश हासिल होता है, जिसका मौद्रिक प्राधिकारी को पालन करना ही होता है। पांचवीं, समय की धारणा और चर अंतराल जिनकी सहायता से राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति के उपकरण लघु तथा दीर्घकालिक लक्ष्यों पर प्रभाव डालते हैं जिसके लिए आर्थिक नीति की इन दो भुजाओं के बीच कुछ हद तक समन्वय की आवश्यकता होती है। अंतिम, गैर समन्वयित नीतिगत परिणामों की अनिश्चितता को सक्रिय समन्वय से न्यूनतम किया जा सकता है क्योंकि समन्वयन की असफलता से प्रायः सामाजिक कल्याण का भारी नुकसान होता है।

तथापि, प्रश्न यह है कि क्या अधिक समन्वय वाकई बेहतर होता है ? यदि केंद्रीय बैंक और सरकार दोनों इस बात पर सहमत हैं कि क्या किया जाना है, किंतु यदि दोनों प्राधिकारियों में से किसी एक के अनिश्चित व्यवहार के कारण समन्वित दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सका तो, ऐसी स्थिति में समन्वय से ही उसमें सुधार लाया जा सकेगा जिसमें समझदार नीति निर्माताओं को अड़ियल प्राधिकारी पर हावी होना पड़ेगा। हालांकि, वास्तविकता यह है कि राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों में समन्वय प्रायः बहुत कमजोर होता है । यदि दोनों प्राधिकारी सामंजस्य से और विश्वसनीय कार्रवाई करें तो समन्वय की कमी इन तीन कारणों में से किसी एक के कारण उत्पन्न हो सकती है, जैसे (i) राजकोषीय और मौद्रिक प्राधिकारी दोनों के अलग-अलग उद्देश्य हो सकते हैं अर्थात् समाज के लिए सबसे अच्छा क्या है उसके बारे में अलग-अलग मत; (ii) राजकोषीय और /अथवा मौद्रिक नीति कार्रवाई का अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाल संभावित प्रभाव के बारे में दोनों प्राधिकारियों के मत भिन्न हो सकते हैं, अर्थात् वे अलग-अलग आर्थिक सिद्धांतों का पालन कर सकते हैं ; और (iii) नीतिगत हस्तक्षेप की अनुपस्थिति में अर्थव्यवस्था की संभावित स्थिति के बारे में दोनों प्राधिकारी अलग-अलग भविष्यवाणी कर सकती हैं (ब्लाइंडर, 1982)। समन्वय की समस्या तभी हल हो सकती है जब उपयुक्त उद्देश्य या सही सिद्धांत या सही भविष्यवाणी वाले प्राधिकारी के हाथ में निर्णय लेने की शक्ति दे दी जाए, बशर्ते यह मालूम हो कि दोनों प्राधिकारियों में सही कौन है। सच्चाई यह है, कि यह पहले से शायद ही कभी मालूम हो पाता है। सबसे अच्छी रणनीति यह है कि दोनों प्राधिकारियों को थोड़े थोड़े अधिकार दे दिए जाएं और दोनों को एक दूसरे की कार्रवाइयों को निरस्त करने की थोड़ी सी पात्रता दे दी जाए, हालांकि इसका सबसे खराब परिणाम यह हो सकता है कि दोनों में हित की लड़ाई हो जाए अथवा यह भी संभावना है कि यह लड़ाई एक गतिरोध बनके रह जाए।

[2] मंडल फ्लेमिंग ढांचे में, मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के बीच समन्वय का मुद्दा पूर्ण पूंजी गतिशिलता के संसार में विद्यमान नहीं होता है, क्योंकि राजकोषीय नीति तभी प्रभावी होती है जब विनिमय दर स्थिर हो जबकि मौद्रिक नीति तब प्रभावी होती है जब विनिमय दर परिवर्तनीय हो।

7.18 तथापि, नीतिगत मिश्रण की यह अप्रासंगिकता अंतिम सत्य नहीं है क्योंकि तीन अलग-अलग परंतु परस्पर संबंधित मुद्दे नीतिगत समन्वय की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं (कुटनर, 2002) । प्रथम, मौद्रिक राजकोषीय समन्वय का सर्वाधिक स्पष्ट प्रभाव उत्पादन की संरचना पर पड़ता है। एक आबद्ध अर्थव्यवस्था में सरकारी खर्च में वास्तविक वृद्धि से निवेश मांग पर कुछ हद तक ह्रासकारी प्रभाव पड़ता है। वास्तविक ब्याज दर में कमी करके, विस्तारवादी मौद्रिक नीति निवेश के ह्रासकारी प्रभाव को कम कर सकती है, परंतु इससे मुद्रास्फीति बढ़ने का खतरा है। इसके अलावा मौद्रिक-राजकोषीय मिश्रण का भुगतान संतुलन के चालू खाते पर इसका प्रभाव एक अन्य संबंधित आयाम है। राजकोषीय विस्तार से ब्याज दरों पर वृद्धिकारी प्रभाव पड़ेगा तथा इससे उत्पन्न ब्याज दर अंतराल से विदेशी पूंजी के अंतर्प्रवाह को प्रेरणा मिलेगी एवं इस प्रकार निवेश का ह्रासकारी प्रभाव कम होगा। परंतु पूंजी अंतर्प्रवाह का निहितार्थ यह है कि स्वदेशी मुद्रा के अधिमूल्यन से चालू खाता घाटा बढ़ेगा। सन 1980 के बाद के दशक के अमेरिकी घाटा-द्वय की यही व्याख्या दी गई थी। अभी हाल ही में विपरीत प्रकार की समस्या अर्थात कठोर राजकोषीय नीति एवं नरम मौद्रिक नीति सन 1999 यूरो के प्रचलन होने के तुरंत बाद उसके अवमूल्यन के लिए ज़िम्मेदार था (कोहन एवं लाइसेल, 2001) ।

7.19 मौद्रिक-राजकोषीय परस्पर प्रभावों का एक दूसरा विचार इस दृष्टिकोण से उभरता है कि , प्रत्येक राजकोषीय नीतिगत कार्य जिसमें चालू खाता बजट घाटा में वृद्धि होती है का वित्तपोषण या तो भावी कर राजस्व में वृद्धि करके या सरकार की मूल्यवर्गित देनदारियों जैसे कि मुद्रा जिसका कि घाटे के वित्तपोषण के लिए सिक्का ढ़लाई के रूप में प्राप्त लाभ का प्रयोग किया जा सकता है। बिना किसी प्रत्यक्ष मौद्रिक कार्यवाही के भी मूल्य स्तर में वृद्धि द्वारा दो अवधियों के बीच राजकोषीय संतुलन पुनर्स्थापित किया जा सकता है जिससे सरकार की बकाया देनदारियों का मूल्य घटेगा। जहाँ पारंपरिक मत यह है कि राजकोषीय घाटे से अत्यधिक मौद्रिक विस्तार एवं परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति का जन्म होता है, परंतु वहीं मूल्य स्तर का राजकोषीय सिद्धांत (एफटीपीएल) का तर्क है कि राजकोषीय असंतुलन से मुद्रास्फीति में वृद्धि होती है तथा तत्पश्चात् मुद्रा आपूर्ति में उच्च मूल्यों के अनुरूप वृद्धि होती है (वुड फोर्ड, 2001) ।

7.20 तीसरा दृष्टिकोण मौद्रिक एवं राजकोषीय असहयोग से उभरता है । राजकोषीय प्राधिकारियों का व्यवहार मौद्रिक अधिकारियों के मुद्रास्फीति के लक्ष्य को प्राप्त करने के सामर्थ्य को प्रभावित करता है। परंतु इन परिस्थितियों में मूलतः प्राधिकारियों के लक्ष्यों में अंतर होने से उनमें टकराव पैदा होता है। जबकि मौद्रिक प्राधिकारी का यह प्रयास होता है कि उत्पादन एवं मुद्रास्फीति का स्तर राजकोषीय प्राधिकारी के वांछित स्तर से कम रहे, वहीं राजकोषीय प्राधिकारी का प्रयास यह होता है कि उत्पादन एवं मुद्रास्फीति का स्तर मौद्रिक प्राधिकारी की सुविधा स्तर से ऊपर रहे। इस असहयोग का परिणाम होता है, मुद्रास्फीति कारक राजकोषीय नीति जिसका निवारण संकुचनकारी मुद्रा नीति द्वारा किया जाता है (नोरधास, 1994) । इसके अतिरिक्त मौद्रिक नीति प्राधिकारी के पूर्व-वचनबद्धता की कोई उपयोगिता नही होती है, क्योंकि इसके इस वचनबद्धता का मूल्य विवेकाधिकार वादी राजकोषीय नीतिगत कार्यवाही से पूर्णतः नकारात्मक हो जाता हैं (दीक्षित एवं लंबर्टिनी, 2003) ।

## मौद्रिक राजकोषीय परस्पर संबंध का विश्लेषणात्क ढांचा

7.21 राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति एक ही संपूर्ण व्यापक आर्थिक नीति की दो शाखाएं हैं तथा आर्थिक स्थिरता उनका सांझा लक्ष्य है। राजकोषीय नीति सार्वजनिक ऋण का आकार निर्धारित करती है, जबकि मौद्रिक नीति यह निर्धारित करती है कि इस ऋण का कितना अंश केंद्रीय बैंक से लिया जाएगा तथा ऋण प्रबंध नीति लोक ऋण की लागत एवं संरचना तय करती है। इन नीतियों के लक्ष्यों में सदा समरसता नहीं होती, इसके अलावा इन नीतियों में कुछ अंतर्निहित लाभ भी हो सकते हैं जिसके कारण लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नीतिगत समन्वय की आवश्यकता पड़ सकती है। इस संदर्भ में मौद्रिक-राजकोषीय समन्वय के विस्तृत मिलेजुले ढांचे में कई मुद्दों से निपटा जा सकता है।

7.22 मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों के बीच संबंध का विश्लेषण राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण के लिए मौद्रिक वित्त पोषण बांड द्वारा वित्तपोषण में से एक के चयन के संदर्भ में किया जा सकता है । बांड द्वारा ऋण उगाहने का अर्थ है कि सरकारी ऋण का एक निवल भाग आंतरिक या बाह्य बाज़ार में बेचा जाए। दूसरी ओर मुद्रा द्वारा वित्तपोषण [3] में केंद्रीय बैंक द्वारा प्राथमिक निर्गम से ऋण खरीद, खुले बाज़ार के परिचालन एवं गैर जमानती अग्रिम के रूप में केंद्रीय बैंक के सरकार के प्रति निभाव में परिवर्तन। ज़्यादा बांड निर्गम से ब्याज दर पर वृद्धि हेतु दबाव बढ़ता है तथा इससे आर्थिक विकास पर बुरा असर पड़ता है। मुद्रा विस्तार एवं तदनुसार मुद्रा आधार में वृद्धि से मुद्रास्फीति को बल मिलता है जिससे घाटा बढ़ता है और परिणाम स्वरूप भारी घाटा, ज़्यादा मौद्रिक वित्तपोषण और उच्च मुद्रास्फीति दर के दुष्चक्र की सृष्टि होती है।

[3] प्रत्यक्ष मौद्रीकरण और द्वितीयक बाज़ार परिचालनों द्वारा मौद्रीकरण के बीच अंतर किए जाने की आवश्यकता है।

[4] सार्जेन्ट और वालेस (1981) का "मौद्रिकवार का नापसंदीदा गणित" प्रस्तुति में यह दिखाया गया है कि बाण्ड का वित्तपोषण अत्यधिक स्फीतिकारी दबाव पैदा कर सकता है, जो मुद्रास्फीति के प्रति राजकोषीय कारण बनता है।

परंतु सरकारी घाटे के मुद्रीकरण से, विशेषकर अतिरिक्त क्षमता की उपस्थिति में, यह आवश्यक नहीं है कि बुरा प्रभाव पड़े।

7.23 केंद्रीय बैंक द्वारा राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण कदाचित ही स्वैच्छिक होता है। एक केंद्रीय बैंक प्राथमिक बाज़ार में राजकीय प्रतिभूतियों की खरीद द्वारा सरकार को ऋण प्रदान करने को बाध्य होता है। इसीप्रकार केंद्रीय बैंकों के चार्टरों में सरकारी स्वामित्व के कारण केंद्रीय बैंक द्वारा वार्षिक लाभ का सरकार को स्थानांतरण के संबंध में प्रावधान अनिवार्य वित्तपोषण का उदाहरण है। इसके अलावा, सरकारी घाटे का वित्तपोषण बाज़ार ब्याज दर या भारी रियायती दरों पर हो सकता है तथा उत्तरवर्ती अनिवार्य वित्तपोषण का ही एक प्रकार है। इससे भी आगे, विदेशी मुद्रा विनिमय गारंटियां निक्षेप बीमा, आकस्मिक देनदारियां एवं निदेशित ऋण प्रवाह आदि कुछ अर्ध राजकोषीय कार्य हैं जो केंद्रीय बैंक सरकार की ओर से करता है तथा जिनकी लागत सरकार के तुलनपत्र पर परिलक्षित नहीं होती है। इसके विपरीत चलनिधि के प्रबंध की दृष्टि से द्वितीयक बाज़ार से सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद स्वैच्छिक वित्तपोषण का उदाहरण है।

7.24 उपरोक्त संदर्भ में, यह नोट करना समीचीन होगा कि ऋण के वित्तपोषण के भिन्न तरीकों के प्रभाव अलग-अलग होते हैं। एक ओर आंतरिक ऋण पर निर्भरता से वाणिज्यिक क्षेत्र को ऋण उपलब्धता, ब्याज दर तथा मुद्रा आधार पर दुष्प्रभाव पड़ता है, वहीं बाह्य ऋण से बाह्य क्षेत्र के प्रबंध पर असर होता है। अनिवार्य तरीके से सरकारी बांडों की खरीद से भी निजी निवेश का ह्रास होता है। अतः मौद्रिक एवं राजकोषीय संबंधों के विश्लेषण के लिए राजकोषीय घाटे के मौद्रिकरण के परिमाण पर विचार करना पर्याप्त नहीं होगा तथा इसका दायरा बढ़ा कर मुद्रास्फीति को स्थिर रखने, इसके लिए राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण का अभीष्टतम मिश्रण, व्यापक आर्थिक स्थिरता में सहायक ब्याज दर एवं विनिमय दर स्तर को भी इसमें शामिल करना आवश्यक है (रेड्डी, 2000 क)।

7.25 सफल स्थिरीकरण नीति के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के विस्तार एवं संकुचन दोनों के लिए मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों में पूर्व समन्वय हो। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में समन्वय की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होती है क्योंकिं प्रत्येक नीति अलग अपना कार्य करती है तथा लक्ष्यों की प्राप्ति एवं सामंजस्य बाज़ार शक्तियों द्वारा किया जाता है। परंतु विकासशील देशों में घनिष्ठ समन्वय की अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि आदर्श बाज़ार तंत्र का अभाव होता है। इसके अलावा नीति प्राधिकारियों एवं प्रत्येक नीति को दिए गए उप-लक्ष्यों में टकराव हो सकता है जिससे घनिष्ठ समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। परंतु यह जानना आवश्यक है समन्वय-तंत्र देश विशेष की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं से मेल खाता हो।

## II. मौद्रिक एवं राजकोषीय परस्पर संबंध : विभिन्न देशों के अनुभव

7.26 यद्यपि सैद्धान्तिक तौर पर नीति निर्माण में समन्वित दृष्टिकोण के लाभों के बारे में आम सहमति बन रही है परंतु व्यवहार में विभिन्न देशों में मौद्रिक एवं राजकोषीय समन्वय की प्रक्रियागत व्यवस्थाओं में भारी भिन्नता पाई जाती है। देश के इतिहास, सामाजिक - राजनैतिक विचारधारा, वित्तीय बाज़ार विकास की अवस्था तथा नीतियों के लक्ष्य समुच्चय पर निर्भर करते हुए समन्वय का सही क्षेत्र एवं अंतर्वस्तु में अंतर है। परंतु इन सबमें सरकार द्वारा केंद्रीय बैंक से ऋण पर औपचारिक सीमा का आरोपण एक सामान्य बात है। इस संबंध में केंद्रीय बैंक से सरकार को संसाधनों के प्रवाह को सीमित करने के लिए एक संस्थागत साधन के तौर पर केंद्रीय बैंक को अधिक स्वतंत्रता देने का सुझाव दिया जाता है (अलसीना 1988)। विशिष्ट तथा (i) प्रत्यक्ष ऋण, (ii) लाभ स्थानांतरण, (iii) अर्धराजकोषीय क्रिया कलापों को सीमित करने तथा (iv) मौद्रिक नीति एवं ऋण प्रबंध के कार्यों के अलग-अलग करने की व्यवस्था की गई है। अगले अनुच्छेदों में इन विषयों पर विभिन्न देशों के व्यवहारों तथा अंतरराष्ट्रीय अनुभव का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

### केंद्रीय बैंक द्वारा सरकार को ऋण

7.27 मौद्रिक एवं राजकोषीय अधिकारियों के पारस्परिक समन्वय के आकलन का प्रारंभिक बिंदु केंद्रीय बैंक द्वारा राजकोषीय प्राधिकारी के प्रति निभाव की सीमा पर दृष्टिपात करना है। बैंक ऑफ इग्लैंड द्वारा संपन्न सर्वेक्षण, जिसमें 122 विकासशील तथा 20 आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओइसीडी) देशों की तुलना की गई थी, से यह ज्ञान हुआ कि हालांकि दोनों समूहों में विकास दर में कोई विशेष अंतर नही था परंतु विकासशील देशों में मुद्रास्फीति की दर विकसित देशों की दर की अपेक्षा तीन गुणी उच्च थी (फाई एवं अन्य, 1999)। इसके अलावा सरकारी उधार [(i) विकासशील देशों ने विकसित (ओइसीडी* देशों की अपेक्षा दुगनी राशि उधार ली] के प्रभाव को निरस्त करने के लिए विकासशील देशों ने प्रारक्षित निधियों की अपेक्षाओं (केंद्रीय बैंक

[5] राजकोषीय सहिष्णुता चर कारकों पर निर्भर है, अर्थात् (i) केंद्रीय बैंकों का स्वामित्व सरकार के पास हो; (ii) सरकार को केंद्रीय बैंकों के करेंसी निर्गम से होनेवाले फायदे की पात्रता सरकार के लिए हो और (iii) केंद्रीय बैंक, सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करें तथा (iv) केंद्रीय बैंक कमीशन पाने हेतु सरकार के लोक ऋण का प्रबंधन करें (प्रिंगल एंड कोर्टिस, 1999)।

[6] अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा किए गए एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि दिसंबर, 1992 के अंत में आधे से ज़्यादा देशों ने सरकार को चालू खाते पर ओवरड्राफ़ ट देने से मना करने की स्थिति का सर्वेक्षण किया। 44 प्रतिशत विकसित देशों ने तथा 22 प्रतिशत विकासशील देशों ने ऋण और अग्रिम पर पाबंदी लगाई है (कोटारेल्ली, 112 प्रारक्षित निधियों को प्रारंभ में जमाकर्ताओं के हित को सुरक्षित रखने के साधन के रूप लिया जाता था। इसीलिए मूल रूप से, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 42(1) के अंतर्गत अनुसूचित बैंकों से अपेक्षित था कि वे अपनी मांग देयता का 5 प्रतिशत और मीयादी देयता का दो प्रतिशत रिज़र्व बैंक के पास न्यूनतम नकदी प्रारक्षित निधि के रूप में रखें।

में जमा प्रारक्षित राशि विकसित देशों की अपेक्षा पांच गुनी थी) का अत्यधिक प्रयोग किया। इन निष्कर्षों से यह संकेत मिलता है कि विकासशील देशों में मुद्रा प्राधिकारी की पराधीनता के कारण ज़्यादा राजकोषीय निभाव का व्यवहार किया गया[5]।

7.28 केंद्रीय बैंक द्वारा सरकार को ऋण देना राजस्व स्थानांतरण का सबसे प्रत्यक्ष रूप है तथा इसने मौद्रिक-राजकोषीय समन्वय की इच्छा रखने वाले प्राधिकारियों का सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया है। सामान्य दृष्टिकोण यह रहा है कि केंद्रीय बैंक द्वारा सरकार को ऋण की सीमा निर्धारित की जाए। बैंक ऑफ इग्लैंड द्वारा सन् 2000 में 94 देशों की मुद्रा नीतिगत संरचनाओं के सर्वेक्षण से सरकार को केंद्रीय बैंक से किसी भी प्रकार के ऋण के निषेध की प्रवृत्ति उजागर हुई है (सारणी 7.1)।

7.29 कई देशों ने राजकोषीय जवाबदेही विधि द्वारा केंद्रीय बैंक द्वारा प्राथमिक बाज़ार में सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय पर निषेध लगाया है। इसके विपरीत द्वितीयक बाज़ार से सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय तथा केंद्र बैंक में सरकारी धनराशि के निक्षेप पर अपेक्षाकृत कम बाध्यताएं आरोपित की गई हैं। विकसित देशों में जर्मनी, अमेरिका, जापान तथा फ्रांस एवं विकासशील देशों में चिली, पेरु, अर्जेंटीना एवं ब्राजील ऐसे उदाहरण हैं जहां केंद्रीय बैंक ऋण तक सरकारी पहुंच पर अनिवार्य बाध्यताएं हैं। कम बाध्यता वाले देशों में ब्रिटेन (युनाइटेड किंगडम) स्पेन, आयरलैंड, इटली आदि विकसित एवं भारत, इंडोनेशिया एवं मलेशिया आदि विकासशील देश शामिल हैं। ऐसे देशों, जहां वित्तीय बाज़ार विकसित नहीं है, में सरकार को केंद्रीय बैंक ऋण अनुमति देने का व्यवहार्य विकल्प नही है। आदर्श परिस्थितियों की अनुपस्थिति में भी केंद्रीय बैंक द्वारा सरकार को दिया गया ऋण बाज़ार ब्याज दर पर, प्रतिभूतिकृत होना चाहिए तथा उसकी ऋण शर्तें यथा उपरी सीमा का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। अनुपालनीय मानदंडों एवं उसके उल्लंघन के परिणामों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। साथ ही बैंक द्वारा सरकार को अप्रत्यक्ष ऋण यथा वित्तीय संस्थाओं एवं सार्वजनिक उपक्रमों के माध्यम से ऋण पर भी सीमा लगाई जानी चाहिए।

## केंद्रीय बैंक के लाभ

7.30 केंद्रीय बैंक के लाभ भी एक प्रकार का राजस्व अंतरण है। वास्तव में सरकार विश्वसनीयता वृद्धि तथा लाभ अंतरण को अधिक करने हेतु ऐसे ऋणों की मात्रा जिन पर ब्याज जैसी लागत नहीं होती तथा जो राजस्व घाटे को कम करने में मदद करते हैं जान बूझ कर केंद्रीय बैंक से सीमित कर सकती है। इस संदर्भ में, केंद्रीय बैंक से सरकार को अधिक लाभों का अंतरण हो, यह सुनिश्चित करने के लिए एक प्रभावी प्रक्रिया तंत्र है, कि सरकार बैंक में कर्ज ले। कर्जे की भारी मात्रा सरकारी प्रतिभूतियों की अधिक खरीद से केंद्रीय बैंक की ब्याज आय में वृद्धि होगी तथा उसे केंद्रीय बैंक अधिक लाभ के रूप में सरकार को अंतर्गत कर सकता है[8]। आकलन यह दर्शाते हैं कि कुछ देशों में लाभों का यह अंतरण का सकल घरेलू उत्पाद के साथ 4 से 5% का अनुपात था (फ्राई आदि पूर्वोद्धृत)। स्वतंत्र गणना से पता चलता है कि कई देशों में सिक्का ढ़लाई का लाभ अंतरित लाभ से ज़्यादा था। इससे संकेत मिलता है कि केंद्रीय बैंक के अंतरण प्रायः वास्तविक से ज़्यादा प्रच्छन्न होते हैं (फ़ाई एवं अन्य पूर्वोद्धृत)।

## अर्ध राजकोषीय गतिविधियां एवं केंद्रीय बैंक की हानियां :

7.31 राजकोषीय स्वरूप की कुछ गतिविधियों का सरकार से केंद्रीय बैंक को अंतरण मौद्रीकरण का अन्य तरीका है। ऋण प्रबंध, राजकोषीय प्राधिकारी द्वारा निर्धारित विनिमय दर का प्रबंध, राजकोषीय क्षेत्र का सुदृढ़ीकरण, विनिमय प्रतिभूतियां, निक्षेप प्रत्यय तथा आकस्मिक

**सारणी 7.1: सरकार को केंद्रीय बैंक का ऋण**

(राष्ट्रों की संख्या)

| राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण करने के लिए केंद्रीय बैंक की सीमा | औद्योगीकृत | परिवर्ती | विकासशील | समस्त |
|---|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 |
| (i) निषिद्ध, कभी उपयोग नहीं, बहुत कम नही | 26 | 11 | 9 | 46 |
| (ii) कम, प्रवर्तित सीमा | 1 | 5 | 9 | 15 |
| (iii) विद्यमान सीमा जिनका सामान्यतया प्रवर्तन होता है। | 1 | 4 | 20 | 25 |
| (iv) सीमा न होने की स्थिति में व्यापक सीमा विद्यमान होना तथा कुछ प्रक्रिया विद्यमान होना | 0 | 2 | 5 | 7 |
| (v) कोई सीमा नहीं अथवा थोड़ा बहुत प्रवर्तन | 0 | 0 | 1 | 1 |

**स्रोत :** एल. महादेव तथा जी स्टर्न (सं.) : विश्व संदर्भ में मौद्रिक नीति का ढांचा, राउटलेज, 2000

[7] उदाहरण के लिए, बैंक ऑफ इंग्लैंड समस्त लाभ को करेंसी निर्गमकर्ता से खज़ाना को अंतरित कर देता है।

[8] यह इस बात को भी अनिवार्य बनाता है कि केंद्रीय बैंक प्राथमिक बाज़ार नीलामी में भाग न ले।

देनदारियाँ, निदेशित ऋण प्रवाह तथा वित्तीय दमन आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनका संचालन केंद्रीय बैंक सरकार की ओर से करता है। इनका बजट में कहीं हिसाब-किताब नहीं होता तथा ये गुप्त रहती हैं। इनकी लागत तथा इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण तौर पर इन गतिविधियों के कारण हानियां केंद्रीय बैंक के तुलन पत्र में तथा परिणामतः सरकार को कम लाभ के अंतरण के रूप में परिलक्षित होती हैं। लैटिन अमेरिकी देशों जैसे चिली में 1980 के बाद के दशक के अंत में इन अर्ध राजकोषीय नीतियों से केंद्रीय बैंकों को हानियां हुई। सन् 1990 के बाद के दशक में फिलीपीन्स में इस नुकसान से केंद्रीय बैंक को वित्तीय हानियां उठानी पड़ीं (डालटन एवं जिजोबेक, 1999)।

### ऋण प्रबंधन

7.32 केंद्रीय बैंकों की अर्ध राजकोषीय गतिविधियों को सीमित करने की अनिवार्यता को देखते हुए अनेक औद्योगिक देशों ने ऋण प्रबंध को मौद्रिक नीति से अलग करने के प्रयास किए तथा ऋण प्रबंधकों एवं केंद्रीय बैंक के बीच सूचना के समुचित आदान-प्रदान के लिए तंत्र स्थापित किए। यह यूरोपीय मौद्रिक संघ के सदस्यों के बारे में सर्वाधिक स्पष्ट है क्योंकि मौद्रिक नीति संचालन यूरोपीय केंद्रीय बैंक प्रणाली द्वारा किया जाता है तथा ऋण का प्रबंध राष्ट्रीय प्राधिकारियों द्वारा किया जाता है जिससे मौद्रिक नीति एवं ऋण प्रबंध के बीच हितों के टकराव की संभावना काफी कम हो जाती है (अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष, 2002)। मेस्ट्रिक संधि के प्रावधान, जो सरकार पर अपने राष्ट्रीय केंद्रीय बैंक से ऋण लेने पर प्रतिबंध लगाते हैं, ऋण सीमा नियत करते हैं जिससे ऋण अनुरक्षणीयता को प्रोत्साहन मिलता है, ऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति के अलगाव को मज़बूत करते हैं। इटली में ऋण प्रबंध राजस्व एवं व्यय की सामान्य वार्षिक आवर्ती एवं असामान्य प्रवृत्ति का संज्ञान लेकर, सरकार के नकदी प्रवाह की सतत निगरानी करते हैं। इसके अलावा ऋण प्रबंधक एवं बैंक ऑफ इटली, जिसके पास सरकार अपना धन जमा रखती है तथा जिसके माध्यम से सरकार का अधिकांश नकदी प्रवाह होता है, सरकारी नकदी के प्रवाह की सूचना का आदान-प्रदान करते हैं। सरकारी धन पर समुचित नियंत्रण के लिए सिर्फ वित्त मंत्रालय ही इस खाते का परिचालन कर सकता है।

7.33 वित्तीय बाज़ार में विरोधाभासी गतिविधियों की रोक-थाम के लिए ऋण प्रबंधकों एवं केंद्रीय बैंकों के बीच समन्वय के लिए भी औद्योगिक राष्ट्रों ने प्रयास किए। यूनाईटेड किंगडम में जब बैंक ऑफ इग्लैंड मुद्रा बाज़ार परिचालन करता है, तो उस समय ऋण प्रबंध कार्यालय नीलामी नहीं करता है तथा वह 14 दिन की परिपक्वता अवधि की विपरीत रेपो भी नहीं धारण करता है। जिस दिन बैंक की मौद्रिक नीति समिति अपनी ब्याज दरें घोषित करती है उस दिन यह कार्यालय तदर्थ नीलामी भी नहीं करता हैं [9]।

7.34 औद्योगिक राष्ट्रों ने मुक्त बाज़ार परिचालनों के लिए केंद्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के प्रयोग से केंद्रीय बैंक तथा ऋण प्रबंधकों के बीच उठने वाले टकराव से बचने के लिए मार्ग ढूंढ लिए हैं। यह मामला विशेषकर तब महत्वपूर्ण बन जाता है जब सरकार ऋण आवश्यकताएं बहुत कम या बिल्कुल नहीं हो, परंतु केंद्रीय बैंक को मौद्रिक नीति के परिचालन हेतु ज़्यादा परिमाण में कम जोखिम वाली आस्तियों की आवश्यकता होती है। यूरोपीय मौद्रिक संघ में यूरोपीय केंद्रीय बैंक प्रणाली ने सरकारी प्रतिभूतियों पर पूर्ण निर्भरता से बचने के लिए सार्वजनिक एवं निजी प्रतिभूतियों की एक विस्तृत सूची बनाई है। अन्य औद्योगिक राष्ट्रों में भी ऐसे ही कदम उठाए गए हैं।

7.35 सुविकसित वित्तीय बाज़ार के अभाव में उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं एवं विकासशील देशों में समन्वय की कठिनाइयां ज़्यादा गंभीर हैं। केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता के अभाव तथा सुविकसित

**सारणी 7.2 : ऋण प्रबंधन प्रथाओं का सर्वेक्षण**

(राष्ट्रों की संख्या)

| ऋण प्रबंधन प्रथाएं | हां | नहीं |
|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 |
| **I. संस्थागत ढांचा** | | |
| (i) वार्षिक उधार प्राधिकार | 14 | 4 |
| (ii) ऋण उच्चतम सीमा | 10 | 8 |
| (iii) पृथक ऋण एजेंसी | 4 | 14 |
| **II. संविभाग प्रबंधन** | | |
| (i) ऋण से प्रबंध की गई पृथक सरकारी नकदी राशि | 11 | 6 |
| **III. सरकारी ऋण के लिए प्राथमिक बाज़ार संरचना** | | |
| (i) केंद्रीय बैंक की प्राथमिक बाज़ार में सहभागिता | 6 | 12 |
| (ii) केंद्रीय बैंक की केवल गैर स्पर्धा आधार पर सहभागिता | 6 | 8 |

**टिप्पणी** : जोड़ का 18 तक पहुंचना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह प्रत्यर्थी (रिस्पांडेंट) की संख्या पर आधारित है।

**स्रोत** : लोक ऋण प्रबंधन हेतु दिशानिदेश (अंमुको-विश्व बैंक, 2002)।

[9] तथापि, यह पाबंदी डीएमओ द्वारा किए जा रहे द्विपक्षीय परिचालनों पर लागू नहीं होती है क्योंकि उनका बाज़ार पर प्रभाव नीलामी की तुलना में अपेक्षाकृत कम होता है।

घरेलू बाज़ार की अनुपस्थिति में सरकार द्वारा केंद्रीय बैंक से ऋण लेने की प्रवृत्ति से छुटकारा दिलाना कठिन है। इससे ऋण प्रबंध एवं मुद्रा नीति के लक्ष्यों का अलग-अलग करना कठिन हो जाता है क्योंकि दोनों एक समान बाज़ार लिखतों पर निर्भर रहते हैं तथा वे आय वक्र के लघु छोर पर कार्य करने के लिए विवश होते हैं। एक अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष - विश्व बैंक सर्वेक्षण ने विकास यात्रा के विभिन्न पड़ावों पर स्थित 18 देशों के ऋण प्रबंध व्यवहारों का वर्णन किया है जिसने कुछ महत्वपूर्ण मानदंडों के आधार पर मौद्रिक एवं राजकोषीय समन्वय तथा ऋण प्रबंध के लक्ष्यों में अंतर को स्पष्ट किया है (अ.मु.को. 2002) (सारणी 7.2)।

7.36 पोलैंड जैसे अनेक देशों ने राजस्व एवं व्यय के पूर्वानुमान तथा वित्त मंत्रालय एवं केंद्रीय बैंक के बीच समुचित समन्वय तंत्र एवं सूचना विनिमय व्यवस्था की स्थापना में कठिनाईयां महसूस की हैं (यूगोलिनी, 1996)। तथापि कुछ देशों ने मौद्रिक नीति की गतिविधियों तथा मुद्रा प्रबंध के बीच समुचित समन्वय के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं। ब्राजील एवं कोलंबिया में ऋण प्रबंधक एवं केंद्रीय बैंक सूचना के आदान प्रदान एवं तथा सरकार के चालू एवं भावी चलनिधि की आवश्यकताओं के पूर्वानुमान के लिए नियमित रूप से मिलते हैं। ब्राजील में केंद्रीय बैंक को वार्षिक वित्तीय कार्यक्रम पर टिप्पणी करने का अवसर मिलता है तथा सरकार द्वारा केंद्रीय बैंक से प्रत्यक्ष ऋण लेने पर विधिक प्रतिबंध है। मेक्सिको में एक सामान्य आर्थिक एवं राजकोषीय पूर्वानुमान समुच्चय का प्रयोग करके ऋण प्रबंध, राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति का निर्माण किया जाता है। इसके अलावा मेक्सिकन केंद्रीय बैंक अनेक प्रकार के लेनदेन में सरकार के एजेंट की भूमिका निभाता है। इससे मेक्सिको में राजकोषीय, ऋण प्रबंध तथा मुद्रा नीति प्राधिकारियों के बीच परस्पर निरंतर कार्यकारी संबंध मज़बूत होते हैं तथा सूचना के समुचित विनिमय को प्रोत्साहन मिलता है। स्लोवेनिया में केंद्रीय बैंक राजकोषीय दस्तावेजों में निहित वार्षिक ऋण कार्यक्रम पर टिप्पणी करता है तथा सरकार पर केंद्रीय बैंक से उधार लेने पर विधिक प्रतिबंध है।

7.37 उदीयमान बाजार वाले देशों में जमैका ने मौद्रिक नीति निरपेक्ष ऋण प्रबंध लक्ष्यों की स्पष्टतर परिभाषा की अनुमति दी है। सरकार के आर्थिक एवं वित्तीय कार्यक्रमों में सुमेलता सुनिश्चित करने हेतु बैंक ऑफ जमैका एवं योजना प्राधिकारी के वरिष्ठ अधिकारियों की नियमित बैठकें होती हैं। मोरक्को में बजट कानूनों का रुख, विशेषतः बजट घाटे का स्तर एवं बजट घाटे की पूर्ति हेतु संसाधनों के प्रबंध, को परिभाषित करने के लिए राजकोष एवं बाह्य वित्त विभाग सक्रिय रूप से भाग लेते हैं (अ.मु.को पूर्व उद्धृत)। भारत में केंद्रीय बैंक में आंतरिक बैठकों द्वारा ही ऋण प्रबंध, राजकोषीय तथा मुद्रा नीतियों का समन्वय सुनिश्चित किया जाता है तथा ऋण आवश्यकताओं के प्रभावों पर केंद्रीय बैंक एवं वित्त मंत्रालय के बीच नियमित चर्चा होती है। इसके अतिरिक्त एक वार्षिक बजट पूर्व-अभ्यास द्वारा मौद्रिक एवं राजकोषीय लक्ष्यों का सुमेल निश्चित किया जाता है।

7.38 राजकोषीय एवं मौद्रिक समन्वय प्रक्रिया का अभी विकास हो रहा है। हालांकि राष्ट्रीय व्यवहारों में अंतर हैं, परंतु एक निश्चित आम सहमति उभरती हुई प्रतीत होती है। मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों की सुमेलता एवं अनुपूरकता से विश्वास पैदा होता है जो स्थायित्व सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विभिन्न देशों के अनुभव से यह साफ झलकता है कि निश्चित लक्ष्य एवं उत्तरदायित्व जैसे सुरक्षा उपाय भी राजकोषीय अपव्यय की रोकथाम नहीं कर सकते हैं। 1990 के बाद के दशक में इस मत को बल मिला जिसने अनेक देशों में केंद्रीय बैंक ऋण को सीमित करने के प्रयास को जन्म दिया। विशिष्टतया, सुधारों का केंद्र बिंदु केंद्रीय बैंक रहा क्योंकि राजकोषीय समायोजन का असर मौद्रिक प्राधिकारी की गतिविधियों पर पड़ता है, केंद्रीय बैंक को परिचालन की स्वायत्तता देने तथा राजनैतिक दखलंदाजी से रक्षा करने हेतु अनेक देशों ने संस्थानिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए वैधानिक उपाय किए। राष्ट्रों ने अधिक पारदर्शिता एवं प्रकटीकरण व्यवहार तथा मौद्रिक नीति के निर्माण एवं निर्धारण प्रक्रिया में खुलापन लाकर अपने केंद्रीय बैंकों को अधिक ज़िम्मेदार बनाने का प्रयास भी किया है। विकसित देशों के अनुभव से यह ज्ञात होता है कि ऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति परिचालन का विलगन वित्तीय बाज़ारों के विकास पर निर्भर करता है। एक भली-भांति काम करने वाले सरकारी प्रतिभूति बाज़ार से यह संभव होता है कि सरकार बड़ी मात्रा में बाज़ार से संसाधन जुटाए जिससे मुद्रा नीति परिचालनों में अधिक युक्तिचालन की गुंजाइश मिलती है। इसके अलावा विकसित देशों में मूल्य स्थिरता के प्रति पक्की वचनबद्धता द्वारा मुद्रानीति लक्ष्यों की स्पष्ट परिभाषा करना संभव हुआ जिससे ब्याज दरों की एकसार अवधि संरचना का विकास संभव हुआ। इसने वित्तीय बाज़ारों, विशेषकर ऋण बाज़ार के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिससे विकसित अर्थव्यवस्थाओं में ऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति के विलगन का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके साथ-साथ विकसित देशों ने वित्तीय बाज़ार के विस्तार एवं गहनता के लिए प्रयास किए जिससे बाज़ार शक्तियों के द्वारा समायोजन के समन्वय के अनुकूल वातावरण निर्मित हुआ। कुछेक देशों में मौद्रिक राजकोषीय समन्वय दोनों के लिए स्पष्ट परिभाषित नियमों के अनुसार होता है।

## III. भारत में मौद्रिक राजकोषीय परस्पर संबंधों का विकास

7.39 किसी भी अन्य विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में भारत में भी वर्षों से मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का निर्माण सामान्य लक्ष्य समूह यथा साम्यता के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि की उच्च एवं वहनीय दर तथा पर्याप्त स्तर तक मूल्य स्थिरता तथा व्यवहार्य भुगतान संतुलन बनाए रखने के लिए ही किया जाता है। सिद्धांततः भारत में मौद्रिक एवं राजकोषीय समन्वय से संबंधित प्रावधान भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 में निहित है, जिनके अनुसार रिज़र्व बैंक केंद्रीय एवं राज्य सरकारों के ऋण का प्रबंध करता है तथा उनके बैंकर का कार्य करता है[10] बदले में संबंधित सरकारों को रिज़र्व बैंक में एक न्यूनतम धनराशि जमा रखनी होती हैं जिस पर ब्याज नहीं मिलता। परंतु भारत में ऐतिहासिक रूप से रिज़र्व बैंक पर सरकार के प्रभुत्व के अधीन इन दो प्रक्रियाओं के समन्वय का विकास हुआ। रिज़र्व बैंक के उदय के समय औपनिवेशिक परिस्थितियों ने तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को राजकोष निरपेक्षता की नीति अपनाकर रिज़र्व बैंक की भूमिका को वित्तीय प्रणाली के रोजमर्रा के प्रबंध तक सीमित करने को प्रेरित किया। द्वितीय विश्व युद्ध की धन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार को रिज़र्व बैंक से ऋण लेने को बाध्य किया। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने विकासशील अर्थव्यवस्था के वांछनीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अग्रणी भूमिका अपनाई तथा रिज़र्व बैंक ने निभाव के रुझान वाली मौद्रिक नीति अपनाई। राष्ट्रीकरण के पश्चात् सरकार तेजी से फैलती सार्वजनिक बैंकिंग प्रणाली से आबद्ध योगदानों द्वारा अतिरिक्त संसाधन एकत्र कर सकी। अनियंत्रित राजकोषीय निभाव से 1990 के शुरू में आर्थिक संकट पैदा हुआ, परंतु सरकार एवं रिज़र्व बैंक की सक्रिय भूमिका से मौद्रिक नीति निर्माण में राजकोषीय प्रधानता में कमी आई तथा आर्थिक नीति की दोनों शाखाओं में अधिक समन्वय स्थापित हुआ।

7.40 मौद्रिक राजकोषीय संबंधों का निर्धारण एक ओर बजटीय असंतुलनों[11] का रिज़र्व बैंक सरकार के बजट घाटे के वित्तपोषण के निवल निभाव तथा अन्य तरीकों द्वारा किया गया तथा राजकोषीय अनिवार्यताओं की अनुक्रिया में मौद्रिक नीति प्रक्रिया में किए गए समायोजनों द्वारा किया गया तथा दूसरी ओर, विकसित होती व्यापक आर्थिक परिस्थितियों द्वारा हुआ। इन सीमाओं के अंतर्गत 1990 के बाद के दशक तक राजकोषीय घाटे से मुद्रा विस्तार हुआ तथा सरकार एवं अन्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के बैंकिंग क्षेत्र द्वारा निभाव को सहारा देने हेतु रिज़र्व बैंक ने वाणिज्यिक क्षेत्र के वित्त पोषण को नियंत्रित किया। 1980 के बाद के दशक में राजकोषीय प्रधानता के हानिकारक प्रभावों की पहचान से मुद्रा - उत्पादन - मूल्य के परिप्रेक्ष्य में मुद्रा आपूर्ति - आरक्षित मुद्रा संबंधों की व्याख्या में मुद्रा गुणांक की सहायता से मौद्रिक नीति निर्माण पर इसके दुष्प्रभावों की औपचारिक समीक्षा करने की उत्प्रेरणा मिली जिससे राजकोषीय घाटे के मौद्रीकरण को कम करने पर ध्यान दिया गया। संकटोत्तर काल में चूंकि राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण के लिए रिज़र्व बैंक से ऋण लेने की प्रवृत्ति का नियंत्रण हुआ। अतः ब्याज दरों के उदारीकरण तथा सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास से कम राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण के लिए कम मौद्रीकरण एवं अधिक बांड निर्गम का दौर आया। इस दौर में, रिज़र्व बैंक ने सक्रिय ऋण प्रबंध नीति चलाई ताकि सरकार का बढ़ता हुआ बजट घाटा एवं अधिक बांड निर्गम से ब्याज दरों पर दबाव पड़ने से आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव न पड़े। साथ ही चूंकि बाज़ारों के अधिक मुक्त होने तथा संस्थाओं को परिचालन स्वतंत्रता मिलने से मौद्रीकरण के स्रोत, अनिवार्यतः बाह्य कारकों के कारण, और विविध हो गए। अतः मुद्रा नीति निर्माण हेतु इन सभी कारकों का आकलन करने के लिए बैंक ने बहु संकेतक दृष्टिकोण अपनाया।

7.41 उपरोक्त पृष्ठभूमि में इस सेक्शन में मौद्रिक राजकोषीय संबंधों के तीन महत्वपूर्ण चरणों की चर्चा की गई है। प्रथम चरण 1935-1950 अवधि से संबंधित है, दूसरा चरण 1950-91 से संबंधित है जिसमें राजकोषीय प्रधानता एवं मौद्रिक निभाव का वर्णन है तथा तीसरा चरण 1991-2003 से संबंधित है जिसमें आर्थिक संकट तथा तदनुगामी राजकोषी एवं वित्तीय क्षेत्र सुधारों की चर्चा है।

### प्रथम चरण : प्रारंभिक वर्ष (1935-1950)

7.42 प्रारंभिक वर्षों में मौद्रिक राजकोषीय संबंधों का विकास लगभग अनुपस्थित आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के मद्देनज़र केंद्रीय बैंकिंग के कार्यों एवं तकनीकों के अनुकूलन के प्रयासों, द्वितीय विश्वयुद्ध शुरु होने के कारण मिली विशेष जिम्मेदारियों के निवर्हन, स्वतंत्र भारत में बैंक की नई भूमिका तथा निजी बैंक से राष्ट्रीकृत

[10] जहां यह कार्य केंद्र सरकार के लिए अनिवार्य हैं (धारा 20 और 21 के अंतर्गत) वहीं इसी प्रकार का कार्य भारतीय रिज़र्व बैंक, जम्मू और कश्मीर तथा सिक्किम राज्य को छोड़कर अन्य राज्य सरकारों के लिए उनके साथ अलग से करार के माध्यम से करता है (धारा 21क के अंतर्गत)।

[11] रंगराजन, बसू और जाधव (1989) द्वारा निर्धारित विश्लेषणात्मक ढांचे के अनुसार सरकारी व्यय (गैर ब्याज और ब्याज) और उसके राजस्व आगमों के बीच के अंतर का वित्तपोषण रिज़र्व बैंक के बाहर और उसके भीतर धारित घरेलू ऋण देयताओं के माध्यम से किया जाता है।

बैंक बनने के सक्रमण काल की पृष्ठभूमि में हुआ (भा.रि.बैंक, 1970)। अपने प्रारंभिक वर्षों में 1930 के बाद के शुरुआती सालों की मंदी के बाद इसे द्वितीय विश्वयुद्ध काल की तेजी का मुकाबला करना पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध काल के दौरान आजादी से पहले की बार-बार बदलती राजकोषीय नीति (1945-1951) दीर्घ राजनैतिक संकट, देश के बटंवारे के समय की सामाजिक उथल - पुथल तथा कोरिया युद्ध की तेजी से उत्पन्न परिस्थितियों में इसे मौद्रिक नीति निर्माण में स्थायित्व को प्रोत्साहन देने के प्रयास करने पड़े।

*संरक्षणवादी राजकोष नीति एवं प्रारंभिक मुद्रा परिचालन*

7.43 1930 के बाद के दशक में भारत सरकार ने, अमेरिका, इंग्लैंड तथा फ्रांस सरकारों द्वारा मंदी की समाप्ति के लिए चलाई जा रही सक्रिय राजकोषीय तथा विनिमय दर नीतियों के विपरीत, संतुलित बजट एवं निर्धारित विनिमय दर की निर्बाधता की नीति का पालन किया। वास्तव में बजट संतुलन की प्राप्ति को रिज़र्व बैंक की स्थापना की पूर्व शर्त माना जाता था। राजकोषीय निरपेक्षता को परिलक्षित करते हुए रिज़र्व बैंक से सरकार ने बहुत कम ऋण लिया तथा सरकारी प्रतिभूतियों के मूल्य को स्थिर रखने के लिए उसे सरकारी ऋण कार्यक्रम को बहुत अधिक सहायता नहीं देनी पड़ी। अतः मौद्रिक नीति का ध्यान मुद्रा के दैनंदिन प्रबंध एवं विनिमय दर के प्रबंध पर केंद्रित था परंतु मौद्रिक नीति उपकरणों की सीमित परिचालन नम्यता के कारण इसमें भी पर्याप्त कौशल की आवश्यकता पड़ती थी।

*युद्ध का वित्तपोषण एवं मौद्रिक विस्तार*

7.44 द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ के बाद सरकारी खर्च, जो युद्ध के पहले दो वर्षों में कम था, 1942-43 में बढ़ कर दुगुना हो गया तथा लगातार बढ़ता गया। सन 1945-46 में युद्ध का खर्च सकल राजकीय खर्च का 77 प्रतिशत था। इसके परिणामस्वरूप रिज़र्व बैंक को इस हद तक ब्रिटिश सरकार एवं उसके मित्रों के युद्ध के खर्च का वहन करना पड़ा कि अधिक कर वसूली एवं बजट लाभ के बावजूद भारत सरकार उस खर्च को वहन करने में असमर्थ रही। 1940-46 वर्षों के दौरान भारत सरकार एवं मित्रों के कुल खर्च का 45% का वित्तपोषण रिज़र्व बैंक को करना पड़ा। इसके अलावा युद्धपूर्व समय के विपरीत 1940 के बाद के दशक में तत्काल प्रयोग न होने वाले वसूली योग्य युद्ध खर्चे के कारण भारी मात्रामें तेजी से जमा हो रह स्टर्लिंग शेष की समस्या का सामना करना पड़ा तथा मुद्रा निर्गम द्वारा सरकारी खर्चे के लिए भारी मात्रा में धन जुटाना पड़ा (सारणी 7.3)।

7.45 तेजी से बदलते राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिदृश्य के अनुरूप राजकोषीय नीति में भी बदलाव आए। युद्धोतर काल में मंदी की प्रत्याशा से किए गए राजकोषीय शिथिलताजन्य मुद्रास्फीति दबाव के पुनः उभरने पर उलटना पड़ा तथा बजट घाटे की पूर्ति एवं निजी मांग का नियंत्रण करने हेतु भारी कर लगाए गए। युद्धोत्तर काल में मोटे तौर पर कम ब्याज वाली मुद्रा नीति से पीछे हटना पड़ा। मुद्रा विस्तार कम ही हुआ क्योंकि बजट घाटे एवं बैंक ऋण विस्तार के विस्तारक प्रभाव को भुगतान संतुलन में घाटे द्वारा निरस्त कर दिया गया।

*प्रारंभिक वर्षों में मौद्रिक नीति के उपकरण*

7.46 प्रारंभिक वर्षों में बैंक नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात में परिवर्तन नहीं कर सकता था तथा उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ी, क्योंकि कम ऋण उठाव के कारण बैंक अपने जमा में वृद्धि की राशि का बड़ा भाग सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करते थे[12]। चूंकि बैंक-दर अपरिवर्तनीय रखी गई थी (सिवाय सन् 1935 में 50 आधार बिंदु तक कमी के), प्रारंभिक वर्षों में मौद्रिक प्राधिकारी के पास केवल बैंकों से स्टर्लिंग खरीद, साप्ताहिक खज़ाना बिल नीलामी नियंत्रण तथा बैंकों को दीर्घकालिक प्रतिभूतियों की जगह मध्यम एवं अल्पावधिक प्रतिभूतियां बेचने के लिए मुक्त बाज़ार परिचालन के उपकरण थे। उल्लेखनीय है कि इन उपकरणों का प्रयोग सरकारी

**सारणी 7.3: समष्टिगत आर्थिक और मौद्रिक संकेतक : 1930 और 1940 के दशक**

(प्रतिशत)

| अवधि (औसत) | विकास दर | | | भा.रि.बैं. की विदेशी आस्ति की तुलना में घरेलू आस्ति | सघउ की तुलना में करेंसी |
|---|---|---|---|---|---|
| | वास्तविक सदेउ | थोमूसू | मुद्रा आपूर्ति | | |
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 1936-40 | 1.3 | 4.3 | 9.6 | 39.1 | 8.0 |
| 1941-45 | 1.0 | 18.1 | 37.8 | 95.4 | 12.5 |

स्रोत : जाधव, 2003

[12] आरक्षित निधि की आवश्यकताओं को, शुरू-शुरू में जमाकर्ताओं के हित की सुरक्षा के रूप में समझा गया। इसप्रकार, मूलत: भा.रि.बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 42 (1) के अंतर्गत अनुसूचित बैंकों को उनकी मांग देयताओं के पांच प्रतिशत तथा मीयादी देयताओं के दो प्रतिशत की न्यूनतम नकद आरक्षित राशि रिज़र्व बैंक के पास रखना अपेक्षित है।

आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता था तथा बाज़ार आवश्यकताओं को केवल गौण स्थान दिया जाता था। वास्तव में स्थिर ब्याज रखने की आवश्यकता भी इसलिए थी ताकि निर्धारित विनिमय दर प्रणाली बनाए रखने में सहूलियत हो तथा स्टर्लिंग अंतर्प्रवाह को प्रोत्साहन मिले। रिज़र्व बैंक ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वाणिज्यिक बैंकों को मुनाफाखोरी के कामों जैसे शेयर, बुलियन तथा खाद्यान्न की जमानत पर ऋण देने पर नियंत्रण रखने को कहा।

## दूसरा चरण - राजकोषीय प्रधानता एवं मौद्रिक निभाव (1950-1991)

7.47 आजादी के बाद रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीकरण किया गया तथा बैंकिंग कंपनी अधिनियम, 1949 ( जिसका सन् 1966 में बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 का नाम दिया गया) के पारित होने के बाद इसने समस्त बैंकिंग क्षेत्र के व्यापक एवं प्रभावी नियंत्रण की शक्तियां प्राप्त कर की। भारत में केंद्रीय बैंकिंग के शैशव काल में मौद्रिक - राजकोषीय परस्पर संबंधों का विकास चार अलग-अलग पहलुओं में रिज़र्व बैंक की विकासमान भूमिकाओं के परिप्रेक्ष्य में हुआ। प्रथम, रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति को पुनः क्रियान्वित किया गया, विशेषकर 1950 के बाद के दशक के मध्य में, जो अल्पावधि दबावों का पूर्वानुमान एवं उनके समाधान के अलावा आयोजन प्रक्रिया की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील होनी चाहिए थी। दूसरी भूमिका वाणिज्यिक बैंकों के विनियमन एवं उनके व्यवस्थित विकास को प्रोत्साहन देने की थी। तीसरी एवं चौथी भूमिका सन् 1960 के बाद के दशक में उद्योग एवं 1970 के बाद के दशक में कृषि के वित्तपोषण के औपचारिकीकरण को प्रोत्साहित करने की थी (बालचंद्रन, 1998)। 1970 के बाद के दशक में आपूर्ति संकट से उत्पन्न स्फीतिकारक दबावों का सामना करने हेतु एक समन्वित मौद्रिक राजकोषीय अनुक्रिया की आवश्यकता पड़ी। सरकार के राजस्व खाते में पहली बार सन् 1979-80 में घाटा होने एवं बाद के समय में उसके विस्तार तथा मुद्रा-वित्त पर बढ़ती निर्भरता से सन् 1980 के बाद के दशक के मध्य में मौद्रिक- राजकोषीय संबंधों की संरचना का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता पड़ी।

*राजकोषीय सक्रियता एवं योजना का वित्तपोषण*

7.48 स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक एवं आर्थिक अनिश्चतताएं धीरे-धीरे घटीं तथा सन् 1950-51 के पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से राजकोषीय नीति ने सामाजिक आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नई अर्थव्यवस्था में जहां आय का स्तर तथा तदनुसार बचत-स्तर कम था, वहां राजकोषीय नीति ने आधारभूत संरचना के रूप में पूंजी आधार तथा ग्रामीण विकास की ज़िम्मेदारी संभाली। ऐसी परियोजनाओं के उच्च पूंजी-उत्पाद अनुपात तथा दीर्घ निर्माण अवधि के कारण पूंजी निर्माण का वित्तपोषण गैर वाणिज्यिक शर्तों पर करना आवश्यक था। इसके लिए बाज़ार के संसाधनों पर समुचित अधिकार स्थापित करने के लिए सरकारी तंत्र का प्रयोग किया गया। योजना में स्थिर किए गए निवेश लक्ष्यों ने मुद्रा नीति निर्माण की पृष्ठ भूमि का काम किया तथा मुद्रा नीतिको कुछ राष्ट्रीय लक्ष्यों, जिनमें वित्तीय प्रणाली की गहनता भी शामिल थी, की प्राप्ति का साधन बनाया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों ने पूर्वानुमान किया कि उत्पादन में वृद्धि तथा वास्तविक बचतों से ऋण में वृद्धि होगी (भा.स. 1951)। 1950 के बाद के दशक के शुरू में विकास दर कम रही। मुद्रा नीति पर मूल्य स्थिरता बनाए रखने के लिए कोई बेजा दबाव नही पड़ा क्योंकि बड़े मुद्राभंडार के कारण आयात तथा औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता के बेहतर दोहन से मुद्रास्फीति के दबाव का निवारण किया जा सकता था।

7.49 द्वितीय पंचवर्षीय योजना में योजना का आकार दुगना करने तथा बाद में योजनाकार में और वृद्धि से आंतरिक एवं सरकारेत्तर स्रोतों में वृद्धि की आवश्यकता पड़ी। तब प्रचालित केन्जियन रुढ़िवादी विचारधारा के अनुरूप उत्पादक क्षमता के पूर्ण दोहन के लिए महत्वाकांक्षी निवेश योजनाओं तथा अविकसित अर्थव्यवस्था के निम्न बचत स्तर के अंतर को पाटने के लिए बजट घाटा का प्रयोग किया गया। सन 1950 के दशक के मध्य से क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं के वित्तपोषण के लिए बाज़ार ऋण एवं घाटे के वित्तपोषण पर बढ़ती निर्भरता के कारण मौद्रिक नीति का संचालन राजकोषीय घाटे के आकार एवं उसके वित्तपोषण के माध्यम द्वारा शासित था। अतः मौद्रिक नीति को योजनाओं के वित्तपोषण से उत्पन्न घाटे की पृष्ठभूमि में मूल्य स्थिरता लक्ष्य की प्राप्ति के साथ समझौता करना पड़ा।

*घाटे का वित्तपोषण - मौद्रिक नीति पर प्रभाव*

7.50 हालांकि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के प्रावधानों के अनुसार रिज़र्व बैंक को अग्रिम की तारीख से तीन महीने तक देय ऋण देने की शक्ति दी गई है, परंतु यह आदेशात्मक प्रावधान न होकर सिर्फ समर्थकारी प्रावधान है। ये अग्रिम सरकार के आमदनी एवं खर्चों के अस्थायी असंतुलन के वित्तपोषण के लिए किए गए थे ताकि सरकार के नकदी प्रबंध में सहायता मिले। परंतु व्यवहार में यह घाटे के वित्तपोषण का साधन

बन गया अर्थात जब भी सरकार के खाते में जमा राशि न्यूनतम शेष से कम पड़ती हो उस स्थिति में, तदर्थ खज़ाना बिल के द्वारा बजट घाटे की पूर्ति का स्थायी वित्तीय स्रोत बन गया (बाक्स VII.2)। अतः यद्यपि तदर्थ खज़ाना बिलों की अवधि 91 दिन ही थी तथा उनका उद्देश्य सरकार की अस्थायी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था परंतु, परिपक्व तदर्थ खज़ाना बिलों की जगह पर नए तदर्थ खज़ाना बिलों के निर्गम से यह सरकारी घाटे की पूर्ति का स्थायी एवं लगभग असीमित माध्यम बन गया। दूसरे आधार मुद्रा के निर्माण पर रिज़र्व बैंक का नियंत्रण खत्म हो गया।

7.51 तदर्थ खज़ाना बिलों के निर्गम द्वारा रिज़र्व बैंक से असीमित ऋण संसाधनों की उपलब्धि से केंद्र सरकार के राजकोषीय अनुशासन को खतरा पैदा हो गया (सारणी 7.4)। आसानी से प्राप्त रिज़र्व बैंक ऋण से न केवल केंद्र सरकार के राजकोषीय विवेक का ह्रास हुआ, बल्कि राज्य सरकारों को भी ओवरड्राफ़्ट लेने की शक्ति मिली जिसका एक बड़ा भाग केंद्र द्वारा रिज़र्व बैंक से नया लोन लेकर अपने खाते में लिया जाता था (बालचंद्रन, 1998।

7.52 वैधानिक तौर पर नियत न्यूनतम नकदी शेष की पूर्ति के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक को सरकार की अधिक शेष राशि रखने की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकार के अनुरोध पर अतिरिक्त तदर्थ, खज़ाना बिलों का निर्गम करना पड़ता था। चूंकि सरकार के बजट घाटे का अनियंत्रित विस्तार हो रहा था तथा सरकार तदर्थ खज़ाना बिलों के भुगतान में असमर्थ थी, अतः रिज़र्व बैंक के निर्गम विभाग के संतुलन पत्र में इन खज़ाना बिलों का बड़ा भाग परिलक्षित होता था। अतः इस शर्त के साथ कि ब्याज से अर्जित अधिक लाभ को रिज़र्व बैंक सरकार को अंतरित करेगा, जुलाई 1958 के बाद समय-समय पर तदर्थ खज़ाना बिलों के स्थान पर दिनांकित प्रतिभूतियाँ जारी की गईं।

**सारणी 7.4 : रिज़र्व बैंक द्वारा बजट घाटे का वित्तपोषण**

(करोड़ रुपए)

| अवधि | सृजित तदर्थ | निरस्त तदर्थ | निवल सृजित तदर्थ | निधिकृत तदर्थ | निधीयन के बाद निवल |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| I योजना | 350 | 10 | 250 | 0 | 250 |
| II योजना | 1,975 | 1,030 | 945 | 500 | 445 |
| IIIयोजना | 2,430 | 1,630 | 800 | 275 | 525 |

**स्रोत :** जी. बालचंद्रन, दि रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया, 1951-67', 1998

**बॉक्स VII.2**
**तदर्थ खजाना बिल**

भारत में खजाना बिलों की शुरुआत विश्व युद्ध II के दौरान हुई थी, जो भारत सरकार द्वारा रिज़र्व बैंक को जारी किए गए थे जिसका उद्देश्य स्टर्लिंग ऋण के प्रत्यावर्तन को अस्थाई वित्त उपलब्ध कराना था। चूंकि रुपए ऋण के माध्यम से सरकार की प्राप्तियां कई बार स्टर्लिंग ऋण के प्रत्यावर्तन से मेल नहीं खातीं, इसलिए रिज़र्व बैंक को तदर्थ खजाना बिल जारी किए गए ताकि रिज़र्व बैंक के पास वैकल्पिक पात्र रुपया आस्तियां उपलबध रहें। भारत सरकार ने बाद में जब दिनांकित प्रतिभूतियों का कार्यक्रम शुरू किया तो तदर्थ खजाना बिलों को समाप्त कर दिया गया। तदर्थ खजाना बिल 1948-49 में थी, ब्रिटीश सरकार को अंतरित स्टर्लिंग प्रतिभूतियों को रिप्लेस करने के लिए स्टर्लिंग बैलेंस करार 1948 के अनुसार जारी किए गए थे। सरकारी घाटे के वित्तपोषण के लिए तदर्थ खजाना बिलों की शुरुआत पहली पंचवर्षीय योजना से देखी जा सकती है, हालांकि उनकी मात्रा उतनी होती थी कि उसका प्रभाव गैर स्फीतिकारी हो। किंतु, 1955 के प्रारंभ में भारत सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के बीच एक परिचालनगत व्यवस्था की गई, जो स्वतः ही तदर्थ खजाना बिल बनाए जाने की सुविधा मुहैया कराती थी जिससे अत्यधिक नकदी आहरित कर लिए जाने की स्थिति में केंद्र सरकार की निर्धारित न्यूनतम नकदी राशि के स्तर को बनाए रखा जाता था। अतः, जब केंद्र सरकार का वास्तविक शेष निर्धारित न्यूनतम स्तर (उस समय शुक्रवार के दिन 50 करोड़ रुपए और अन्य दिन 4 करोड रुपए) से कम हो जाता था तो तदर्थ खजाना बिल स्वतः सृजित कर लिए जाते थे, किंतु शेष राशि का स्तर निर्धारित स्तर तक पहुंच जान के बाद उसका सृजन निरस्त हो जाता था।

हालांकि यह अस्थायी व्यवस्था मानी जाती थी, किंतु 1958 से तदर्थ खजाना बिल वित्तपोषण तथा दिनांकित प्रतिभूतियों के निधीयन का नियमित साधन बन गए। सामान्य अर्थों में, 'निधीयन' का आशय 'निधिकृत' ऋण जारी करके लोक ऋण का समेकन करना है, अर्थात् 'फ्लोटिंग' ऋण के स्थान पर 'दीर्घकालिक अथवा अदिनांकित प्रतिभूतियां', अर्थात् खजाना बिल और अर्थोपाय अग्रिम (भारिबैं 1983)। स्वतः मौद्रीकरण की समस्या बढ़ती गई क्योंकि अत्यधिक मात्रा में तदर्थ खजाना बिल जारी किए गए और 1982 से अदिनांकित बाज़ार मं न बेचने योग्य विशेष प्रतिभूतियों में परिवर्तित कर दिए गए जिन पर 4.6 प्रतिशत भुनाई दर रखी गई है। प्रारंभ में बकाया तदर्थ खजाना बिलों को सरकार द्वारा दिनांकित प्रतिभूतियों में परिवर्तन किया गया जिसकी मात्रा 1981 तक प्रति वर्ष 50-100 करोड़ रुपए थी। 1982 से इस तरह के परिवर्तन में न केवल तेजी आई बल्कि उनकी मूल विशेषताओं में भी बुनियादी परिवर्तन हुआ है। पूर्व में जो परिवर्तन किए गए वे सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों के रूप में थे जिनकी विशिष्ट परिपक्वता अलग-अलग ब्याज दरों पर थी, किंतु 1982 के बाद जो परिवर्तन हुआ वह 4.6 प्रतिशत विशेष प्रतिभूतियों के रूप में हुआ जिनके शोधन की कोई तिथि निश्चित नहीं थी और यह कार्य विशेष रूप से रिज़र्व बैंक द्वारा किया गया। मार्च, 1994 के अंत तक रिज़र्व बैंक के पास धारित विशेष प्रतिभूतियों के ऐसे परिवर्तनों की बकाया राशि 71,000 करोड़ रुपए थी (भारिबैं, 1994)। विशेष प्रतिभूतियों में परिवर्तित तदर्थ खजाना बिलों की बकाया राशि मार्च, 1997 के अंत में 1,21,818 करोड़ रुपए थी (भारिबैं, 2005)

7.53 तदर्थ खज़ाना बिलों के अलावा प्राथमिक बाज़ार से प्रतिभूतियों की खरीद द्वारा भी सरकारी घाटे का मौद्रीकरण किया जाता था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना से बाज़ार ऋण लक्ष्यों में वृद्धि हुई तथा बाज़ार द्वारा अनवशोषित प्रतिभूतियों की खरीद के लिए रिज़र्व बैंक को आगे आना पड़ा। सरकारी घाटे के मौद्रीकरण की अपेक्षा रिज़र्व बैंक ने प्राथमिक बाज़ार में सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद को बेहतर समझा। परंतु प्राथमिक बाज़ार में सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद से मौद्रिक नीति परिचालन पर बाध्यकारी प्रभाव पड़ा क्योंकि सरकारी ऋण की लागत को नियंत्रित करने हेतु ब्याज दर में वृद्धि को टालना पड़ा। सरकारी प्रतिभूतियों के व्यापक बाज़ार की अनुपस्थिति से रिज़र्व बैंक के दूसरे ऋण नियंत्रण उपकरण यानि मुक्त बाज़ार परिचालन का प्रभाव भी सीमित था। सन् 1950 के दशक के मध्य में निजी क्षेत्र द्वारा ऋण उठाव में वृद्धि के संकेत मिलने पर रिज़र्व बैंक को एक नए उपकरण से स्वयं को सुसज्जित करना पड़ा। भारतीय रिज़र्व बैंक (संशोधन) अधिनियम 1956 द्वारा मौद्रिक नीति में नमनीयता प्रदान करने के लिए नकदी आरक्षित अनुपात (अपनी मांग एवं आवधिक देयताओं का वह भाग जो बैंक रिज़र्व बैंक के पास जमा रखते हैं) में परिवर्तन की शक्ति रिज़र्व बैंक को प्रदान की गई। इस संशोधन से पहले रिज़र्व बैंक के पास वाणिज्यिक बैंकों के प्रारक्षित अनुपातों को, जो मांग देयताओं का 5% तथा अवधि देयताओं का 2@ पर थे, बदलने की शक्ति नहीं थी। साथ-साथ आनुपातिक प्रारक्षित प्रणाली के स्थान पर न्यूनतम प्रारक्षित प्रणाली के लागू होने के कारण परिवर्तनशील प्रारक्षित आवश्यकताओं के लागू होने का महत्व है[13]। यद्यपि सन 1949 में ही रिज़र्व बैंक को चयनित ऋण नियंत्रण की शक्ति प्रदान की गई थी परंतु, इसने इसका नियमित प्रयोग सन 1956 में ही आवश्यक वस्तुओं की जमानत पर ऋणों के नियंत्रण के लिए किया गया ताकि मुद्रास्फीति को कम रखा जा सके। इन प्रयासों के बावजूद विदेशी मुद्रा के क्षरण एवं अनियंत्रित बजट घाटे के कारण मौद्रिक नीति में युक्तिचालन की कम गुंजाइश बची थी।

*आर्थिक आघात एवं बैंकों के लिए ऋण राशनिंग*

7.54 रिज़र्व बैंक, जो पहले योजनाओं के संसाधन निर्धारण में निष्क्रिय भूमिका निभाता था, 1960 के दशक में निरंतर सक्रिय होता गया तथा उसने योजना निर्माताओं का विकास एवं संसाधन संग्रहण के अधिक यथार्थ संमत लक्ष्य निर्धारित करने का आग्रह किया। इससे तीसरी योजना के मौद्रिक बजट का निर्माण किया गया। सन् 1960 के दशक की शुरुआत में रक्षा एवं विकास आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सरकारी खर्च में वृद्धि, खाद्यान्नों की कमी, आयात द्वारा जिसकी आंशिक भरपाई की जा सकी, मेहनतानों के मूल सूचीबद्ध होने से मुद्रास्फीति दबाव में भारी वृद्धि हुई। परिणामतः मुद्रा नीति निर्माण का कार्य कठिनतर हो गया। रिज़र्व बैंक को, मौद्रिक नीति को सख्त बनाने की ऐसी रणनीति अपनानी पड़ी जो सरकारों की आर्थिक निभाव पर दुष्प्रभाव न डाले, तदनुसार, रिज़र्व बैंक ने 1960 के बाद के दशक के पूर्वार्द्ध में बैंक दर में कई किस्तों में वृद्धि कर मौद्रिक नीति को कठोर बना दिया तथा सरकार को दिए जाने वाले रिज़र्व बैंक ऋण के मुद्रा विस्तार के दबाव को कम करने हेतु बैंकों द्वारा निजी क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋण के पुनर्वित्त की शर्तों को प्रतिबंधात्मक बना दिया। इसके लिए रिज़र्व बैंक ने 1960 में कोटा स्लैब प्रणाली[14] लागू की जिसने रिज़र्व बैंक से बैंकों द्वारा लिए जाने वाले ऋण की लागत में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गई। कोटा स्लैब प्रणाली के कारण ऋण लागत में वृद्धि से बचने के लिए बैंकों ने सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री शरू कर दी जिससे उनको बैंक दर पर उपलब्ध पुनर्वित्त कोटा पर प्रभाव नहीं पड़ता था।

7.55 यह सुनिश्चित करने के लिए कि बैंक सरकारी प्रतिभूतियों को नही बेचें, रिज़र्व बैंक ने सन 1964 में कोटा स्लैब प्रणाली को समाप्त कर उसकी जगह निवल चलनिधि अनुपात (एनएलआर) आधारित ऋण प्रणाली शुरू की[15] । नई प्रणाली में बैंकों द्वारा सरकारी

[13] वर्तमान समानुपातिक प्रारक्षित प्रणाली के अंतर्गत, नोट निर्गमन, स्वर्ण मुद्रा, बुलियन और विदेशी प्रतिभूतियों के प्रयोजन से, ये कुल आस्तियों के 40 प्रतिशत से कम नहीं होने चाहिए। भारतीय रिज़र्व बैंक (संशोधित) अधिनियम, 1956 और भारतीय रिज़र्व बैंक (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1957 के अंतर्गत रिज़र्व बैंक द्वारा जारी किए जाने वाले नोट की मात्रा पर कोई उच्चतम सीमा निर्धारित नहीं की गई है। तथापि, रिज़र्व बैंक के निर्गम विभाग में रखी गई स्वर्ण मुद्रा, बुलियन और विदेशी प्रतिभूतियों का कुल मूल्य किसी भी समय 200 करोड़ रुपए से कम नहीं होना चाहिए, जिसमें से कम से कम 115 करोड़ रुपए का सोना होना चाहिए।

[14] "कोटा स्लैब" रिज़र्व बैंक द्वारा बैंकों को पुनर्वित्त देने से संबंधित वर्गीकृत उधार दर प्रणाली थी जिसमें कोटा के भीतर उधार बैंक दर पर थे और जो उधार उससे ऊपर थे उन पर अलग श्रेणी की दण्डात्मक दरें लगाई जाती थीं। यह "कोटा" बैंकों द्वारा रिज़र्व बैंक के पास रखी गई सीआरआर राशियों से जुड़ा हुआ था।

[15] "निवल चलनिधि अनुपात = [(बैंक की नकद राशियां+ अन्य बैंकों के पास चालू खातों की राशियां + रिज़र्व बैंक के पास राशियां + सरकारी तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभतियों में निवेश) - (भारतीय रिज़र्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से लिया गया कुल उधार)]/सकल मांग और मीयादी देयताएं। एनएलआर - आधारित पुनर्वित्त 1975 में समाप्त कर दिया गया था ताकि लागत तथा पुनर्वित्त की उपलब्धता को अधिक प्रभावी तरीके से नियंत्रित किया जा सके।

प्रतिभूतियों की बिक्री तथा उनके द्वारा रिज़र्व बैंक एवं अन्य प्राधिकृत संस्थाओं के ऋण उठाने से उनका निवल चलनिधि अनुपात नियत अनुपात से कम हो जाएगा तथा उससे बैंकों के पुनर्वित्त ऋण की समस्त राशि पर ब्याज दर उत्तरोत्तर बढ़ती जाएगी। निवल चलनिधि अनुपात आधारित पुनर्वित्त प्रणाली ने बैंकों को सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री करने से हतोत्साहित किया जिससे सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में स्थिरता आई। इसके अलावा एनएलआर (एनएलआर) एक कठोर मौद्रिक नीति का उपकरण था क्योंकि इसमें रिज़र्व बैंक से पुनर्वित्त प्राप्ति के लिए बैंक द्वारा प्राधिकृत संस्थाओं से लिए गए ऋण को घटा दिया जाता था।

7.56 केंद्रीय बैंक के रूप में रिज़र्व बैंक की यह अनिवार्य भूमिका रही है कि वह बैंकों की चलनिधि की स्थिति की निगरानी करे। तदनुसार, नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात (सीआरआर) (जो सन् 1935 से अस्तित्व में था) के अलावा विवेक-सम्मत उपकरण के रूप में बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 के प्रावधानों के अनुसार सांविधिक चलनिधि अनुपात का प्रचलन शुरू हुआ जिसके द्वारा रिज़र्व बैंक बैंकों की मांग एवं अवधि देयताओं के एक प्राधिकृत अनुपात के बराबर मूल्य की तरल आस्तियां रखता था ताकि आवश्यकता पड़ने पर इसके संसाधनों के निस्सरण की आवश्यकता को पूरा किया जाए एवं तदद्वारा बैंकिंग प्रणाली की स्थिरता की रक्षा की जाए। प्रारंभ में नकदी, स्वर्ण, रिज़र्व बैंक में जमा सकल राशि, अन्य बैंकों में चालू खातों में जमा राशि सरकारी एवं अन्य स्वीकृत प्रतिभूतियों आदि तरल आास्तियों को सांविधिक चलनिधि अनुपात में गणना करने योग्य माना गया। सन् 1960 में नकदी प्रारक्षित अनुपात को परिचालन का परिवर्तनीय उपकरण के रूप में उपयोग शुरू करने के बाद बैंकों में अपने उच्चतर नकदी प्रारक्षित अनुपात आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकारी प्रतिभूतियों को बेचने की प्रवृत्ति देखी गई। यद्यपि इस प्रकार बैंक उच्चतर नकदी प्रारक्षित अनुपात आवश्यकता का पालन कर सकते थे, परंतु इससे उनके सांविधिक चलनिधि अनुपात की संरचना बदल जाती थी तथा उनके सरकारी प्रतिभूति धारण में कमी होती थी तथा रिज़र्व बैंक में जमा राशि में उतनी वृद्धि हो जाती थी। बैंकों के इस प्रकार उच्चतर प्रारक्षित अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए सरकारी प्रतिभूतियों को बेचने के व्यवहार को हतोत्साहित करने तथा सरकारी प्रतिभूति बाज़ार को स्थायित्व देने के लिए सन् 1962 में बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 में संशोधन कर नकदी प्रारक्षित अनुपात की राशि को सांविधिक चलनिधि अनुपात में गिनने के अयोग्य माना गया। बैंकों की चलनिधि स्थिति को मज़बूत बनाने के लिए सांविधिक चलनिधि अनुपात को 20% से बढ़ाकर 25% कर दिया गया। 1969 में बैंकों के राष्ट्रीकरण एवं बैंकिंग प्रणाली के विस्तार के बाद सन् 1969 से सन् 1990 तक एस एल आर अनुपात में लगातार वृद्धि होती रहने से तथा सरकारी घाटे की वृद्धि के कारण यह सरकारी प्रतिभूतियों का आबद्ध निवेश आधार बनाने का उपकरण बन गया (बाक्स VII.3)। रिज़र्व बैंक ने निर्यात, लघु उद्योग एवं रक्षा क्षेत्रों में भी ऋण प्रवाह को प्रोत्साहित किया।

7.57 रिज़र्व बैंक को सन् 1966 में रुपए के अवमूल्यन से उत्पन्न मुद्रास्फीति तथा आयात नियंत्रण से उत्पन्न गंभीर औद्योगिक मंदी का सामना करना पड़ा। नियंत्रित मूल्य प्रणाली के द्वारा सरकार ने भी मुद्रास्फीतिकारी दबावों से निपटने का सक्रिय प्रयास किया। इस प्रणाली के माध्यम से सरकार की खाद्यान्न मूल्य नीति, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से लागू थी, खाद्यान्न मूल्य नियंत्रण का माध्यम बनी। तीसरी पंचवर्षीय योजना तक फसल की स्थिति एवं खाद्यान्न मूल्यों पर दबाव के अनुरूप सरकार की खाद्यान्न मूल्य नीति में नियंत्रण, उदारता तथा आंशिक नियंत्रण आदि बदलाव आते रहे। अन्य के अलावा कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा उपभोक्ताओं को राहत पहुँचाने हेतु सन 1965 में खाद्यान्नों की प्रशासनिक क्रय एवं निर्गम प्रणाली शुरू की गई तथा कृषि मूल्य आयोग एवं भारतीय खाद्य निगम की स्थापना की गई। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से राज्यों की सहभागिता से थोक एवं खुदरा तथा कृषि उत्पादनेतर पण्यों को नियंत्रित मूल्य प्रणाली के अधीन लाकर मुद्रास्फीति नियंत्रण में सरकार की भूमिका का विस्तार किया गया। इससे अर्थव्यवस्था में लागत एवं मूल्य वृद्धि या मूल्य एवं मेहनताना वृद्धि के बीच की स्वचालित कड़ी की गुंजाइश कम हो गई। यह नियंत्रण उपभोक्ता वस्तुओं एवं औद्योगिक कच्चे माल पर लागू था क्योंकि इनसे अर्थव्यवस्था की मूल्य संरचना पर प्रभाव पड़ता था। अतः नियंत्रित मूल्य कृषि उत्पादों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि सीमेंट और इस्पात पर भी लागू होते थे (घोष, 1974) ।

*सामाजिक नियंत्रण एवं ऋण आयोजना*

7.58 1970 के बाद के दशक में राजकोषीय नीति का ज़्यादा जोर सामाजिक न्याय एवं गरीबी हटाने पर होने के कारण सन् 1969 में बैंकों के राष्ट्रीकरण तथा वित्तीय संस्थाओं में सार्वजनिक क्षेत्र के शामिल होने के परिणाम स्वरूप मौद्रिक नीति का केंद्र भौतिक आयोजना से हटकर सीधे ऋण एवं ऋण नियंत्रण द्वारा 'ऋण आयोजना' पर आ गया। इन संरचनात्मक एवं संगठनात्मक परिवर्तनों से वित्तीय प्रणाली ने सार्वजनिक क्षेत्र को अर्थव्यवस्था के संसाधनों का उत्तरोत्तर आहरण सरल बनाया। इससे रिज़र्व बैंक एवं सरकार के संबंधों की प्रकृति बदल गई तथा रिज़र्व बैंक ने वित्तीय क्षेत्र की संरचना तथा ब्याज दर को मुद्रा नीति के उपकरण के रूप में उपयोग में सीमित भूमिका निभाई।

## बॉक्स VII.3
## सांविधिक चलनिधि अनुपात : उत्पत्ति और कार्य

भारत में वाणिज्य बैंकों को परंपरागत रूप से दो प्रकार की प्रारक्षित अपेक्षाएं पूरी करनी पड़ती है, अर्थात सीआरआर और एसएलआर। जिसमें सीआरआर, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 42 के अंतर्गत और एसएलआर, बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 24 के अनुसार निर्धारित है, जिसके अंतर्गत सभी बैंकिंग कंपनियों से अपेक्षित है कि वे भारत में अपनी मांग और मीयादी देयताओं का न्यूनतम निर्धारित अंश भारतीय रिज़र्व बैंक के पास नकदी, स्वर्ण, शेष के रूप में, अन्य बैंकों में चालू खाता शेष, मांग और अल्प सूचना पर धन तथा भार रहित सरकारी तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में रखें। चलनिधि अनुपात निर्धारित करने का प्राथमिक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि यदि बैंकों से अप्रत्याशित रूप से प्रचुर मात्रा में धन निकाला जाए तो उस समय उनके पास पर्याप्त चलनिधि प्रारक्षित हा। अतः, इसकी अपेक्षा यह है कि बैंकों में वित्तीय अनुशासन रहे और जमाकर्ताओं को थोड़ी सुरक्षा मिले। वाणिज्य पत्र (सीपी) एक अल्पकालिक मुद्रा बाज़ार लिखत होने के नाते उस 'चल आस्ति' के रूप में माना जा सकता है। तथापि, अच्छी गुणवत्ता के वाणिज्य पत्र की कमी ने सरकारी प्रतिभूतियों को इसमें शामिल करना अनिवार्य कर दिया है, यद्यपि उनकी मीयाद एसएलआर की परिभाषा में मध्यावधि से दीर्घावधि हो सकती है, क्योंकि वे श्रेष्ठ स्वरूप की होती हैं और संकट के समय उन्हें सबसे आसानी से चलनिधि में बदला जा सकता है। (बालचंद्रन, 1998)।

सीआरआर की अनिवार्यता पूरी करने के उद्देश्य से रिज़र्व बैंक के पास रखी गई नकदी 1962 तक समस्त चलनिधि अनुपात का हिस्सा होती थी। इससे बैंकों के लिए सहज हो गया था कि जब भी प्रारक्षित अनुपात की सीमा बढ़ती थी तो वे अपनी सरकारी धारिता को बेच देते थे, जिससे इस लिखत का प्रभाव समाप्त हो जाता था। 1960 के दशक के प्रारंभ में जहां औसत समस्त चलनिधि अनुपात में निरंतर गिरावट हुई है, वहीं जमा की तुलना में ऋण का अनुपात बढ़ा है, और यह आशंका बढ़ गई है कि बैंक का ऋण, जमा में होनेवाली वृद्धि से अधिक है तथा बैंकों की चलनिधि स्थिति का क्षरण हो रहा है। अतः 1962 के बैंककारी विनियमन अधिनियम में संशोधन किया गया और भारत में बैंकों का न्यूनतम एसएलआर उनकी मांग और मीयादी देयताओं के 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर दिया गया। एसएलआर का बनाए रखना खास तौर से इसलिए है ताकि नकदी प्रारक्षित अनुपात की जरूरत को पूरा किया जा सके। फिर भी, प्रचलित सीआरआर अपेक्षा से अधिक के किसी भी शेष को एसएलआर की गणना में शामिल किया जा सकता है। इस संशोधन से यह सुनिश्चित किया गया है कि सीआरआर में जितनी वृद्धि होनी, तो साथ ही समस्त चलनिधि बाध्यता भी उतनी ही बढ़ेगी। बैंकों को इसका पालन 16 सितंबर, 1964 से करना था। बैंककारी विनियमन अधिनियम में 1983 में किए गए संशोधन ने रिज़र्व बैंक को बैंकों का एसएलआर 40 प्रतिशत तक बढ़ाने की शक्ति प्रदान कर दी है।

हालांकि प्रारंभ में एसएलआर को बैंकों की चलनिधि सुरक्षित रखने के उपाय के रूप में इस्तेमाल किया गया था, इससे बैंकों की निजी क्षेत्र को अधिक ऋण देने की क्षमता भी बढ़ जाती थी। रिज़र्व बैंक द्वारा मौद्रिक विस्तार करने तथा सरकार की अनियंत्रित ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने तथा बैंक ऋण के विस्तार की गति को नियंत्रित करने के उद्देश्य से, एसएलआर लिखत सरकार के लिए बैंकों से अत्यधिक मात्रा में संसाधन जुटाने का उपकरण बन गया। एसएलआर जो 1970 में 25 प्रतिशत था उसे धीरे-धीरे बढ़ाकर 1990 में 38.5 प्रतिशत कर दिया गया (चार्ट ए)। इससे सरकारी प्रतिभूतियों में बंधे हुए निवेशक की तरह निवेश करने का आधार बढ़ गया। तथापि, 1990 के दशक के प्रारंभ में समष्टिगत आर्थिक संकट की घटना तथा एसएलआर का राजकोषीय घाटे को पूरा करने के उपकरण के रूप में इस्तेमाल की तुलना में उसे विवेकपूर्ण उपकरण के रूप में इस्तेमाल पर जोर दिए जाने से एसएलआर को वापस कम किया गया और अक्तूबर 1978 में उसकी न्यूनतम सांविधिक अपेक्षा 25 प्रतिशत कर दी गई।

**चार्ट क : सांविधिक चलनिधि अनुपात : 1949 - 2005**

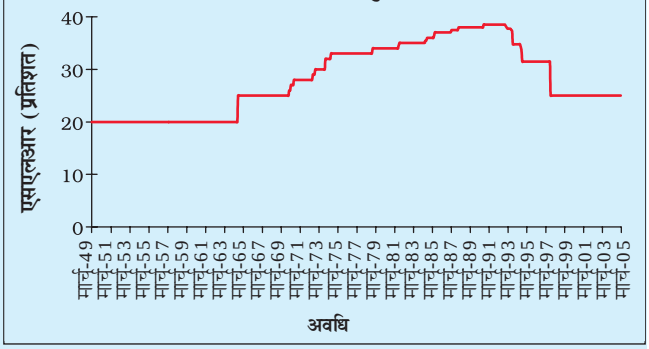


7.59 सन् 1973 के तेल संकट से उत्पन्न मुद्रास्फीति दबावों के कारण राजकोषीय नीति ने अवशिष्ट आय में कमी के लिए कठोर कदम उठाए। गेहूं के दामों में भारी घटबढ़ के निवारण हेतु सरकार ने गेहूं के थोक व्यापार का राष्ट्रीकरण किया तथा सारे देश में क्रय एवं निर्गम मूल्य एकसमान किया । समय के साथ भारी मात्रा में विकास खर्च के वचन के अलावा बढ़ते हुए अनुदानों से सरकारी खर्च और बढ़ गया। सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुरूप राज्यों को अधिक निवल स्थानांतरण, बढ़ते हुए ऋण पर भारी ब्याज तथा मूल्यों में अधिकाधिक अनमनीयता से राजस्व खर्च और बढ़ गया। इसके विपरीत राजस्व में वृद्धि की दर कम थी जिससे सन् 1979-80 से केंद्र सरकार एवं सन् 1982-83 से केंद्र सरकारों और राज्य सरकारों के बजट में संयुक्त रूप से भारी राजस्व घाटे के रूप में संरचनात्मक असंतुलन पैदा हो गया।

7.60 सन् 1970 एवं 1980 के बाद के दशकों में प्रमुखतया रिज़र्व बैंक से भारत सरकार को दिए गए ऋण से प्रारक्षित मुद्रा में आई भारी वृद्धि मुद्रा नीति को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक थी (भा.रि.बैंक, 1985)। इस कारक पर कोई नियंत्रण न होने के कारण मौद्रिक नीति ने अपना ध्यान मुद्रा विस्तार को नियंत्रित करने की दृष्टि समग्र चलनिधि को कम करने तथा सन् 1970 के बाद

के दशक से बन रहे मुद्रास्फीति दबाव को कम करने पर केंद्रित किया। सांविधिक चलनिधि अनुपात का प्रयोग राजकोषीय परिचालन से प्रारक्षित मुद्रा की वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभाव को कम करने वाले उपकरण के रूप में किया जाता था। क्योंकि यह बैंक ऋण का रुख सामान्य प्रयोगों से मोड़कर सरकार की ओर कर देता था। बैंकों द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों की अधिक खरीद सुनिश्चित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने सन् 1970 में तीन चरणों में सांविधिक चलनिधि अनुपात 25% से बढ़ाकर 28% कर दिया। उसके बाद समय-समय पर इसमें वृद्धि की गई तथा दिसंबर 1978 में यह बढ़कर 35% हो गया। रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को दिए गए ऋण मुद्रा-सृजन के प्रभाव को कम करने के लिए रिज़र्व बैंक ने सांविधिक चलनिधि अनुपात में सन् 1973 नकदी आरक्षण अनुपात में भी वृद्धि कर दी। इस ऋण का बड़ा हिस्सा बैंकों से कम ब्याज दर पर ले लिया जाता था। वास्तव में चूंकि इसकी ब्याज दर में जो 1974 में 4.6% थी, कोई परिवर्तन नहीं किया गया अतः 1970 के बाद से काफी बड़ी अवधि तक असली ब्याज दर ऋणात्मक बनी रही। अतः जो बैंक इन प्रतिभूतियों में निवेश करते थे वे यथाशीघ्र रिज़र्व बैंक से उनका पुनर्बट्टीकरण करवा लेते थे तथा इस प्रकार रिज़र्व बैंक के पास ऐसी प्रतिभूतियां भारी मात्रा में जमा हो गई। इसके अतिरिक्त तदर्थ खज़ाना बिल जो वस्तुतः अल्पावधि प्रकृति के थे, वे लगातार बजट घाटे की वजह से भुगतान होने से बड़ी मात्रा में जमा हो गए। उनका उपयोग दीर्घावधि संसाधन स्रोत के रूप किया जाने लगा। परंतु दूसरे तेल संकट एवं सूखे के कारण सन् 1979-81 में सरकारी प्रतिभूतियों की ब्याज दर के भारी वृद्धि हो गई। मुद्रास्फीति दबावों का सामना करने के लिए सन 1970 के बाद के दशक में रिज़र्व बैंक ने भी समय-समय पर ब्याज दर में वृद्धि की।

*राजकोषीय अपव्ययता की समस्या की पहचान तथा मौद्रिक विस्तार को लक्ष्य बद्ध करने की ओर बढ़ना*

7.61 इन वर्षों के दौरान कर/सकल घरेलू उत्पाद अनुपात में वृद्धि के बावजूद केंद्र सरकार के बजट घाटे, जो पहली बार सन 1979-80 में देखा गया, में 1980 के बाद के दशक में भी वृद्धि होती गई जिससे बढ़ते सार्वजनिक ऋण तथा ब्याज भुगतान तथा तदजनित संसाधन क्षय से विकास कार्यों के लिए संसाधनों की कमी की आशंका उत्पन्न हो गई। पिछले दशक में देखी गई भारी मुद्रास्फीति के कारण छठी पंचवर्षीय योजना में मूल्य-स्थिरता के अनुकूल विकास रणनीति अपनाने को प्रेरित किया। परंतु सन 1984-85 एवं 1985-86 में लागत में वृद्धि की वसूली, उत्पादन प्रोत्साहन, कतिपय वस्तुओं के उपभोग को कम करने, अनुदान की मात्रा घटाने तथा विकास योजनाओं के लिए संसाधन संग्रहण को मज़बूत करने के लिए कई बार मूल्यवृद्धि की गई।

7.62 सातवीं पंचवर्षीय योजना में आधारभूत संरचना की कमी को पूरा करने तथा उत्पादकता बढ़ाने पर ज़्यादा ध्यान दिया गया। दिसंबर, 1985 में सरकार ने संसद को प्रस्तुत किए गए अपने चर्चा पत्र 'दीर्घावधि राजकोषीय नीति' में यह माना कि बिगड़ती राजकोषीय स्थिति 1980 के बाद के दशक की सबसे बड़ी चुनौती थी तथा इससे निपटने के लिए उसने राजकोषीय स्थिति में सुधार के लिए विशिष्ट लक्ष्य एवं नीतियाँ प्रस्तावित की, परंतु दीर्घावधि राजकोषीय नीति के अंतर्गत किए गए उपायों से केवल अस्थायी राहत मिली क्योंकि, सरकारी खर्च में बेतहाशा खर्चे तथा सार्वजनिक उपक्रमों के खराब निष्पादन से सन् 1989-90 से राजकोषीय स्थिति फिर बिगडने लगी। लगभग अवरुद्ध सकल घरेलू बचत दर तथा वित्तीय बचत दर, जो 1980 के बाद के दशक की पहली छमाही में सकल घरेलू उत्पाद की क्रमशः 18.4 % एव 6.4 % थीं, तथा चक्रवर्ती समिति[16] की सिफारिशों के अनुसार सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दर में वृद्धि के निर्णय से सन् 1980 के बाद के दशक में उधार की लागत लगातार बढ़ती गई। दिनांकित प्रतिभूतियों की कूपन दर तथा लघु बचतों एवं भविष्यनिधियों की ब्याज दर में वृद्धि से 1980 के बाद के दशक के उत्तरार्ध में ऋण की लागत बहुत बढ़ गई तथा जिसने चालू प्राप्तियों के बड़े भाग का पूर्व-अधिग्रहण कर लिया।

7.63 सरकार के बाज़ार ऋण में वृद्धि के साथ-साथ 1980 के दशक में सरकार को रिज़र्व बैंक के ऋण में भी वृद्धि हुई। 'अत्यधिक बजट घाटे से मुद्रास्फीति नियंत्रण का भार मौद्रिक नीति पर पड़ेगा' इसका संज्ञान लेकर सातवीं पंचवर्षीय योजना में सीमित घाटे वाली अमुद्रास्फीति कारक राजकोष नीति का पालन करने का सुझाव दिया गया (मल्होत्रा-1958)। तदनुसार, रिज़र्व बैंक का सरकार को निवल ऋण, जो 1986-87 में 103.3% हो गया था, दशक के अंत तक घटकर 95% रह गया।

7.64 बजट खाते के वित्तपोषण के लिए ऋण लेने की बढ़ती हुई प्रवृति पर चिंता जताते हुए चक्रवर्ती समिति ने सिफारिश की

[16] भारतीय मौद्रिक प्रणाली की कार्यप्रणाली की व्यापक समीक्षा करने के उद्देश्य से और मूल योजना के उद्देश्यों के संवर्धन में मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता में सुधार लाने के उपाय सुझाने हेतु रिज़र्व बैंक ने 1982 में मौद्रिक प्रणाली की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए एक समिति गठित की (अध्यक्ष : सुखमय चक्रवर्ती)। समिति ने अपनी रिपोर्ट 1985 में प्रस्तुत की।

थी कि मूल्य स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए यह सुनिश्चित किया जाए कि रिज़र्व बैंक से सरकार को ऋण मुद्रा निस्तार की सुरक्षित सीमा से बाहर न जाए। समिति ने उल्लेख किया कि प्रारक्षित मुद्रा एवं मुद्रा आपूर्ति में वांछनीय वृद्धि पर सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक संरचना के विकास के व्यवहार्य दृष्टिकोण के लिए सरकार एवं रिज़र्व बैंक के बीच न्यूनतम समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए (भारतीय रिज़र्व बैंक, 1985)। समिति ने सिफारिश की थी कि मुद्रा प्राधिकारी मौद्रिक विस्तार को लक्ष्य बद्ध करने की रणनीति अपनाए जिसमें फीडबैक के अनुसार संशोधन किया जाए तथा एम$_3$ को लक्ष्य मुद्रा माना जाए। यह रणनीति वास्तविक क्षेत्र की वृद्धि दर तथा मूल्य स्तर में सहनीय वृद्धि को ध्यान में रखकर वांछित मुद्रा प्रसार सुनिश्चित करने के सांझा प्रयासों ने रिज़र्व बैंक एवं भारत सरकार को मिलकर काम करने को प्रेरित करेगी। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि उत्पादन एवं ऋण योजनाओं में विचारणीय समन्वय स्थापित करने के लिए वार्षिक एवं पंचवर्षीय योजनावधि के लिए समग्र मौद्रिक बजट बनाया जाए। घाटे के भारी मौद्रीकरण एवं तदनुसार सरकार को रिज़र्व बैंक के ऋण में अनुबंधित सीमा से अधिक वृद्धि की संभावना का विलोपन करने के लिए समिति ने यह सुझाव दिया कि ब्याज दरों में वृद्धि के साथ सरकारी प्रतिभूतियों की परिपक्वता अवधि कम की जाए।

7.65 चक्रवर्ती समिति की सिफारिशों के अनुसार बजट के मौद्रीकरण को सही प्रकार से जानने तथा एतदद्वारा राजकोषीय परिचालन के मौद्रिक प्रभावों पर ज़्यादा ध्यान केंद्रित करने के लिए केंद्र सरकार ने सन् 1985-86 के बजट से 'सरकार को निवल रिज़र्व बैंक ऋण' का ज्ञापन मद के रूप में उल्लेख करना शुरू किया। बैंकों को भी सन 1985 में रिज़र्व बैंक में जमा नकदी शेषों तथा खज़ाना बिलों में भारी घटबढ़ से बचने का परामर्श दिया गया क्योंकि इन गति विधियों से सरकार को रिज़र्व बैंक के निवल ऋण में अस्थिरता पैदा होती थी।

7.66 चक्रवर्ती समिति की सिफारिशों के अनुसार सन् 1986-87 से मौद्रिक नीति कार्यनीति का केंद्र बिंदु ऋण आयोजना से हटकर मौद्रिक विस्तार की लक्ष्यबद्ध करने के दृष्टिकोण पर आ गया। इससे सरकार एवं रिज़र्व बैंक के बीच अधिक समन्वय की ज़रुरत पड़ी क्योंकि मुद्रा विस्तार लक्ष्यों का आकलन संघीय बजट के प्रस्तुतीकरण के पश्चात ही बजट घाटे के परिमाण तथा सरकार के बाज़ार से उधार कार्यक्रम की जानकारी मिल पाती थी।

7.67 सन् 1980 के बाद के दशक के अंत मे राजकोषीय स्थिति में भारी गिरावट से राजकोषीय नीति के अनुरक्षण के बारे में चिंताएं पैदा हुई। इस घटना के बाद सरकारी घाटे एवं उसके वित्त पोषण के विश्लेषण की आवश्यकता महसूस की गई (रंगराजन एवं अन्य, 1989) तदनुसार, सरकार की निवल उधार आवश्यकता को दर्शाने वाली "सकल राजकोषीय घाटा' की अवधारणा का जन्म हुआ। तत्पश्चात भारत सरकार ने अपने आर्थिक सर्वेक्षण एवं रिज़र्व बैंक ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में राजकोषीय घाटे एवं उसके वित्त पोषण की अवधारणा का व्यापक प्रयोग किया (बाक्स VII.4)।

**बॉक्स VII.4**
**राजकोषीय अंतर की गणना - बजट घाटा, मौद्रीकृत घाटा और राजकोषीय घाटा**

1980 के दशक के मध्य में जो राजकोषीय अंतराल आ गया था उसे 'बजट घाटे' के रूप में मापा गया जिसका मुख्य कारण तदर्थ खजाना बिलों की मात्रा तथा बकाया अन्य 91 दिवसीय खजाना बिलों एवं केंद्र सरकार की रिज़र्व बैंक में रखी जमाराशियों तथा उसके अन्य नकदी शेषों में हुआ परिवर्तन है। जबकि बजट घाटे में जैसा कि उस समय परिभषित किया गया था, राजकोषीय परिचालन के मौद्रिक प्रभाव को काफी कम बताया गया क्योंकि उसमें दिनांकित प्रतिभूतियों में रिज़र्व बैंक के निवेश को शामिल नहीं किया गया, किंतु कुछ मामलों में मौद्रिक प्रभाव को उस सीमा तक अत्यधिक बताया गया जिस सीमा तक बैंकों में खजाना बिल रखे गए थे। इसे देखते हुए, चक्रवर्ती समिति ने इस आवश्यकता पर जोर दिया कि सरकार का रिज़र्व बैंक पर पूरी निर्भरता का उपाय किया जाए ताकि राजकोषीय परिचालनों के मौद्रिक प्रभाव को आंका जा सके।

चूंकि सरकारी प्रतिभूतियों के नए निर्गमों की बाज़ार से पर्याप्त मांग न होने तथा दिनांकित प्रतिभूतियों में कम अभिदान की स्थिति में अधिकांश हिस्सा रिज़र्व बैंक द्वारा ले लिया जाता है और उसका प्रारक्षित मुद्रा वृद्धि पर वही प्रभाव पड़ता है जो खजाना बिलों की खरीद से पड़ता है, इस स्थिति में समिति ने सिफारिश की है कि रिज़र्व बैंक के पास सरकारी जमाराशियों के समायोजन के बाद रिज़र्व बैंक की दिनांकित प्रतिभूतियों और खजाना बिलों की धारिता में हुए निवल परिवर्तन, अर्थात् रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को किए गए निवल जमा को सरकारी घाटे के मौद्रीकरण की मात्रा की माप के रूप में लिया जा सकता है । समिति ने यह भी सिफारिश की है कि राजकोषीय अंतर को राजकोषीय घाटे के रूप में मापा जाए जो सरकार की निवल उधार आवश्यकता को प्रदर्शित करेगी, वर्ष 1989-90 के भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण ने राजकोषीय अंतर को एक ओर सरकारी व्यय तथा निवल उधार तथा दूसरी ओर चालू राजस्व एवं अनुदानों के बीच के अंतर की गणना को बताया है। यह राजकोषीय घाटे की अवधारणा की पहली सरकारी मान्यता थी।

### ऋण प्रबंध बनाम मुद्रा प्रबंध

7.68 प्रारंभिक वर्षों में केंद्र एवं राज्य सरकार की प्रतिभूतियों में निवेश इन शर्तों के अधीन किया जाता था कि कुल राशि शेयर पूंजी, प्रारक्षित निधि तथा रिज़र्व बैंक जमादेयताओं के तीन बटे पांच भाग के योग से अधिक नहीं होगा तथा उसमें अल्पावधि एवं दीर्घावधि प्रतिभूतियों का अनुपात भी नियत किया गया था। रिज़र्व बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों की धारिता पर सीमा का निर्धारण काफी हद तक अंतरराष्ट्रीय अनुभवों के आधार पर किया गया था जिसमें प्रथम विश्वयुद्ध से 1930 के दशक की भारी मंदी तक की अवधि में केंद्रीय बैंकों को असीमित मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद के लिए विवश किया गया था। तत्पश्चात बाध्यता को हटा लिया गया तथा रिज़र्व बैंक को मुद्रा नीति के परिचालन में नमनीयता की शक्ति प्राप्त हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सरकारी प्रतिभूति मूल्यों की स्थिरता बनाए रखने तथा सरकारी प्रतिभूतियों में अधिकतम निवेश सुनिश्चित करने हेतु मुक्त बाज़ार परिचालन ऋण प्रबंध नीति का महत्वपूर्ण साधन बना।

7.69 यद्यपि शुरुआत के वर्षों में गैर बैंकिंग स्रोतों जैसे देशी राज्यों, बड़े उद्योगपतियों तथा उद्यमियों का सरकार के उधार कार्यक्रम में भारी योगदान रहता था, परंतु वे बाद में इन प्रतिभूतियों को बैंकों को बेच देते थे। सन 1945-51 में सरकार का निवल उधार ऋणात्मक था और कठोर मौद्रिक परिस्थितियों को सरल बनाने के लिए रिज़र्व बैंक ने मुक्त बाज़ार से सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय किया तथा बैंकों को दीर्घावधि प्रतिभूतियाँ खरीदने की प्रवृत्ति से बच कर संतुलित अवधि मिश्रण की प्रतिभूतियां खरीदने की सलाह दी। योजनाबद्ध विकास के प्रारंभिक वर्षों में सरकार का उधार कार्यक्रम बाज़ार की मांग को पूरा नहीं कर पाता था तथा बाज़ार मांग को पूरा करने के लिए रिज़र्व बैंक ने अपने खाते में उपलब्ध प्रतिभूतियाँ बेचीं। परंतु द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रारंभकाल में यह सब बदल गया तथा सरकार के उधार कार्यक्रम में जनता का योगदान धीरे-धीरे कम हो गया।

7.70 बैंकों पर लागू सांविधिक चलनिधि अनुपात आवश्यकता संबंधी प्रावधानों तथा वित्तीय संस्थाओं तथा बीमा कंपनियों द्वारा निवेश पर लागू इसी प्रकार के सांविधिक प्रावधानों से निर्मित सरकारी प्रतिभूतियों के आबद्ध बाज़ार से निम्न ब्याज दर पर ऋण लेना आसान बन गया। 1950 के बाद के दशक से सरकारी उधार में निरंतर वृद्धि तथा आबद्ध निवेशकों द्वारा सांविधिक अनिवार्यता से अधिक निवेश के प्रति अनिच्छा के कारण रिज़र्व बैंक को शेष ऋण को खपाने के लिए आगे आना पड़ा।

7.71 सन् 1980 के दशक के पूर्वार्ध से दीर्घकालिक प्रतिभूतियों पर ब्याज दर में भारी वृद्धि से इन प्रतिभूतियों की मांग में वृद्धि हुई। इसके अलावा दैनिक एस एल आर के सख्त अनुपालन से बैंकिंग क्षेत्र का सरकारी बाज़ार ऋण में योगदान बढ़ा । परंतु दशक के अंत में संसाधन जुटाने के बाज़ारेत्तर स्रोतों जैसे लघु बचत तथा भविष्य निधि योजनाओं का महत्व बढ़ा तथा आंतरिक ऋण प्रबंध नीति पृष्ठभूमि में चली गई (तारापोर, 1990)।

7.72 सन् 1990 के बाद के दशक के प्रारंभ तक सरकारी प्रतिभूति बाज़ार की अविकसित अवस्था ने मौद्रिक एवं ऋण-प्रबंध समन्वय की सफलता में बाधा डाली। सरकारी प्रतिभूतियों पर नियंत्रित एवं अधिकांशतः अप्रतियोगी ब्याज दरों के कारण खुला बाज़ार के परिचालन मौद्रिक नीति उपकरणों के बजाय राजकोषीय नीति के अनुषंगी के तौर पर काम करते थे।

### मौद्रिक, राजकोषीय एवं ऋण प्रबंध नीतियों का पारस्परिक संबंध - 1935-1991

7.73 सुधार पूर्व काल में मौद्रिक राजकोषीय संबंधों की आधारभूत विचारधारा का जोर रिज़र्व बैंक की स्वायत्तता के बजाय इस बात पर था कि मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों के बीच समरसता हो तथा वे एक ही दिशा में कार्य करें[17]। तदनुसार राजकोषीय नीति की प्रधानता के युग में यह आवश्यक था कि रिज़र्व परिचालन उसमें सहायक बनें। हालांकि रिज़र्व बैंक मौद्रिक एवं ऋण प्रबंध नीतियों का रुझान प्रायः राजकोष नीति के अनुकूल होता था, परंतु इनमें कुछ टकराव एवं समन्वय की घटनाएं भी हुईं।

*नीति-गत-टकरावों की घटनाएं*

7.74 सन् 1957 में ही रिज़र्व बैंक ने तदर्थ खज़ाना बिलों के माध्यम से सरकार को ऋण देने की अपनी परंपरा पर आशंका व्यक्त की जब उसने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि प्रतिसप्ताहांत सरकार के खाते में अंतिम शेष सुनिश्चित करने के लिए तदर्थ का सृजन केवल एक यांत्रिक प्रक्रिया बन गया हैं। तथा उपलब्ध संसाधनों की परवाह किए बगैर सरकार की खर्च करने की प्रवृत्ति पर कोई नियंत्रण नहीं है। रिज़र्व बैंक के अनुसार 'सरकार की इच्छा के अनुसार मुद्रा के स्वचालित विस्तार से रिज़र्व बैंक भारत में मौद्रिक स्थायीत्व

[17] रिज़र्व बैंक के भूतपूर्व गवर्नर एल.के.झा द्वारा दिया गया वक्तव्य, जिसे बालचंद्रन ने उद्धृत किया है, 1998 पृ 730 ।

सुनिश्चित करने के लिए बैंक नोट निर्गम का नियंत्रण करने के अपने सांविधिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने में असमर्थ है (बालचंद्रन, 1998)।' यद्यपि सरकार ने रिज़र्व बैंक को अपने उधार कार्यक्रमों से संबंधित चर्चा में शामिल करने का वचन दिया, परंतु तदर्थ खज़ाना बिल के निर्गम पर औपचारिक नियंत्रण के अभाव में उनके परिणाम को प्रभावित करने की रिज़र्व बैंक की क्षमता का ह्रास हुआ।

7.75 सरकार के कर्ज़ के आकार से मुद्रा प्राधिकारी द्वारा ब्याज दरों में बदलाव लाने में कठिनाइयाँ आती थीं, क्योंकि सरकार उच्चतर ब्याज दरों के खिलाफ थी। इसने रिज़र्व बैंक को ऐसे उपाय करने को बाध्य किया जिनसे सरकारी ऋण की लागत में प्रत्यक्ष वृद्धि नहीं होती। उदाहरण के तौर पर सन् 1960 में मुद्रास्फीति में वृद्धि की समस्या से निपटने के लिए अतिरिक्त नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात लागू कर मौद्रिक नीति को सख्त बनाया गया, हालांकि वह बैंक दर बढ़ाना चाहता था। परंतु इस उपाय से बैंक ऋण विस्तार पर नियंत्रण नहीं लगा क्योंकि अतिरिक्त नकदी प्रारक्षित अनुपात के अनुपालन के लिए बैंकों ने अपनी सरकारी प्रतिभूतियों को बेच दिया जिससे सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में मंदी आई (बालचंद्रन, पूर्वोद्धृत)। सन् 1963 के पश्चात ही रिज़र्व बैंक को यह अनुमति मिली कि वह बैंक दर में 50 आधार बिंदुओं की वृद्धि कर सके। अतः समुचित मौद्रिक नीति उपकरण का प्रयोग करने की रिज़र्व बैंक की स्वतंत्रता के साथ कुछ सीमा तक समझौता किया गया।

7.76 इसके अलावा, सन 1960 के बाद के दशक में रिज़र्व बैंक के मुक्त बाज़ार परिचालन उसकी मौद्रिक नीति का समर्थन करने की बजाय उसका विरोध करते थे। सन् 1960-66 वर्षों में रिज़र्व बैंक दर को 5% से बढ़ाकर 6% कर दिया गया तथा बैंकों के प्रति निभाव को नियंत्रित करने के लिए अनेक उपाय किए गए। परंतु बाज़ार को स्थिर करने के लिए मुक्त बाज़ार परिचालनों द्वारा रिज़र्व बैंक निवल खरीददार बन गया एवं इस प्रकार उसने प्रणाली से उपलब्ध चलनिधि में वृद्धि ही की (बालचंद्रन, पूर्वोद्धृत)।

*समन्वय की घटनाएं*

7.77 सन् 1970 के बाद के दशक के मध्य में हालांकि राजकोषीय नीति का प्राथमिक लक्ष्य आर्थिक विकास को उत्प्रेरित करना था, परंतु सरकार ने मुद्रास्फीति के नियंत्रण हेतु उपाय करने से परहेज नहीं किया। सरकार ने खर्चे घटाने, अवशिष्ट आय को सीमित करने, लाभांश भुगतान कम करने तथा उच्च आयकर समूह के करदाताओं पर अनिवार्य बचत योजना लागू करने जैसे उपाय किए [18]। सरकार ने संघीय उत्पादन शुल्क की दरें बढ़ाईं तथा अनुसूचित बैंकों द्वारा उनके घरेलू ऋणों एवं अग्रिमों पर अर्जित सकल ब्याज दर पर 7 प्रतिशत का ब्याज कर लागू किया। मुद्रास्फीति दबाव में कमी आने पर ब्याज कर को हटा दिया गया, परंतु द्वितीय तेल संकट से उत्पन्न मुद्रास्फीति दबाव के कारण सन् 1980 में इसे दोबारा लागू किया गया। चूंकि ब्याज कर को दीर्घावधि संसाधन संग्रहण उपकरण के तौर पर प्रयोग करने से तेज गति से बदलती परिस्थितियों के प्रतिकार हेतु मौद्रिक नीति की प्रभावकारिता में कमी आती थी, अतः सरकार ने सन् 1985 में ब्याज कर को हटा लिया (सिंह, 1982)।

7.78 इस दौरान किए गए मौद्रिक उपायों में बैंक दर बचत ब्याज दर, ऋण ब्याज दर तथा पुनर्बट्टाकरण दर में वृद्धि शामिल हैं। इसके अलावा खाद्यान्न, कपास, तिलहन, तथा तेल की मुनाफाखोरी की दृष्टि से जमाखोरी रोकने के लिए चयनित ऋण नियंत्रण प्रणाली लागू की गई। अतः हालांकि राजकोषीय नीति के प्रति मुद्रानीति का रुझान सहायक का रहा, परंतु जब सख्त मौद्रिक नीति उपायों की आवश्यकता हुई तो दोनों नीति में घनिष्ठ समन्वय किया गया। इस अवधि में ऋण नीति के उपकरण के रूप में ब्याज, बेहतर माल नियंत्रण तथा बैंकों को ऋण देने में रिज़र्व बैंक की स्वेच्छा महत्वपूर्ण बने। सन 1991 के व्यापक आर्थिक संकट एवं उसके प्रति नीति अनुक्रिया से मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का समन्वय और मज़बूत हुआ।

## तृतीय चरण : व्यापक आर्थिक संकट, सुधार एवं उनका प्रभाव

*सन 1991 के व्यापक आर्थिक संकट की मुख्य कठिनाई*

7.79 सन् 1980 के बाद के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था की उच्चतर विकास दर सन् 1990के बाद के दशक के प्रारंभ में घटकर कम हो गई तथा निरंतर बढ़ते राजकोषीय घाटे के बाह्य क्षेत्र में भी दुष्प्रभाव दिखाने लगा तथा 12 जुलाई 1991 को विदेशी मुद्रा भंडार घट कर 1 अरब डॉलर का रह गया जिससे चालू खाते का घाटा असहनीय

[18] अतिरिक्त पारिश्रमिक (अनिवार्य जमा) अध्यादेश, 1974 में प्रावधान की गई संपूर्ण अतिरिक्त मजदूरी और वेतन तथा अतिरिक्त महंगाई भत्ते की आधी राशि को अनिवार्य रूप से जमा करने का प्रावधान किया गया है, जिसे रिज़र्व बैंक के पास अवरुद्ध रखा जाता है तथा जमा की अवधि समाप्त होने के बाद पांच वार्षिक किस्तों में चुकाया जाएगा। कंपनी (लाभांश पर अस्थाई प्रतिबंध) अध्यादेश, 1974 में कंपनियों द्वारा कर उपरांत लाभ वितरण को सीमित करने का प्रावधान किया गया है तथा तीसरे अध्यादेश में अनिवार्य जमा योजना प्रारंभ की गई है ताकि 15,000 रुपए से अधिक की निवल वार्षिक आय वाले सभी करदाता उसके अंतर्गत आ जाएं। इन जमाराशियों को भी रिज़र्व बैंक के पास अवरुद्ध रखना है और जमाराशि जमा किए जाने वाले वित्तीय वर्ष की समाप्ति से दो वर्ष पूरा होने पर उसे पांच वार्षिक किस्तों में चुकाया जाएगा।

स्तर पर पहुंच गया। इसके अतिरिक्त राजकोषीय घाटे के मौद्रिक नीति द्वारा अनियंत्रित निभाव से उत्पन्न मुद्रा प्रसार से दो अंकों की मुद्रास्फीति दर पैदा हो गई। वैश्विक आर्थिक संकट से और गंभीर बने इन व्यापक आर्थिक असंतुलनों ने अभूतपूर्व बाह्य भुगतान संकट पैदा कर दिया।

7.80 उच्च राजकोषीय घाटों, विशेषकर केंद्रीय सरकार के राजस्व घाटे से; 'बैंकों से ज़्यादा ऋण लेने तथा बैंकों को कम ब्याज दर पर ऋण देने को विवश करने' का दुष्चक्र बन गया (भारतीय रिज़र्व बैंक, 1992)। राजकोषीय नीति की प्रधानता ने मौद्रिक नीति के संचालन को पांच प्रकार से प्रभावित किया। प्रथम, सांविधिक चलनिधि अनुपात, जिसको प्रारंभ में बैंकों द्वारा जोखिमरहित निवेश के उपकरण के तौर पर शुरू किया गया था, वह सरकार द्वारा आबद्ध बैंकिंग प्रणाली के संसाधनों का पूर्वाधिग्रहण करने का साधन बन गया। सांविधिक चलनिधि अनुपात, जो सन् 1964 में निवल मांग एवं मीयादी देयताओं का 25 प्रतिशत था, वह सितंबर 1990 में बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया। दूसरे, सरकार बढ़ती हुई ऋण मांग को पूरा करने में बैंकिंग प्रणाली के संसाधनों की अपर्याप्तता से रिज़र्व बैंक ने राजकोषीय घाटे का मौद्रीकरण किया तथा मौद्रीकरण एवं सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात 1970 के बाद के दशक में 1 प्रतिशत से बढ़कर 1980 के बाद के दशक में लगभग दोगुना यानी 2.1 प्रतिशत हो गया। तीसरे, सन 1980 के बाद के दशक के अंत एक राजकोषीय-मौद्रिक मुद्रास्फीति दुष्चक्र का अस्तित्व उभरकर सामने आया जिसके अनुसार राजकोषीय घाटे के मौद्रीकरण से उत्पन्न अत्यधिक मुद्रा का विस्तार हुआ तथा जिससे सरकार के राजस्व में हुई वृद्धि से ज़्यादा खर्च में वृद्धि हुई जिससे राजकोषीय घाटा और बढ़ा। चौथे, सरकार को ज़्यादा संसाधन उपलब्ध करवाने की विवशता के कारण पैदा हुए मौद्रिक विस्तार से उत्पन्न संसाधनों, जिन्हें बैंक वाणिज्यिक क्षेत्र को आबंटित कर सकते थे, को समेटने के लिए नकद प्रारक्षित अनुपात को सन् 1964 में निवल मांग एवं मीयादी देयताओं के 3 प्रतिशत से बढ़ाकर जुलाई 1989 में 15 प्रतिशत कर दिया गया। अंत में, सार्वजनिक ऋण पर ब्याज लागत को कम करने के लिए नियंत्रित ब्याज दर प्रणाली लागू की गई जिससे मौद्रिक नीति के संप्रेषण माध्यम के रूप में ब्याज दर की तीव्रता घट गई।

*संकट समाधान रणनीति तथा मौद्रिक नीति पर राजकोषीय बाध्यताओं में कमी - 1991-92 से 1993-94 तक*

7.81 व्यापक आर्थिक संकट दो प्रकार से वरदान सिद्ध हुआ। प्रथम, इसमें बढ़ते हुए राजकोषीय घाटे से अनुरक्षणीय विकास दर के लिए आवश्यक समुचित राजकोषीय मौद्रिक संबंधों तथा उच्च मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं को नियंत्रित करने में आने वाली बाधाओं को पहचाना गया। दूसरे, इस संकट ने अनिवार्यता की स्थिति पैदा की तथा सरकार एवं रिज़र्व बैंक द्वारा अभी तक लागू नीतियों को उलटने के लिए समन्वित कार्यवाही की सशक्त इच्छा प्रकट की गई। वास्तव में यह माना जाता है कि सन 1991 का असली महत्व इस तथ्य से है कि सरकार ने इससे प्राप्त अवसर का प्रयोग ऐसे सुधार लागू करने में किया जिसका संकट सें कोई संबंध नहीं था (एन सी ए इ आर, 2001)।

7.82 सरकार एवं रिज़र्व बैंक ने संयुक्त रूप से ऐसी संकट समाधान रणनीति का कार्यान्वय न किया जिसने मौद्रिक राजकोषीय संबंधों को नई दिशा दी तथा राजकोषीय नीति ने मौद्रिक नीति को उचित महत्व प्रदान किया। इस नीति के अनुसार सन् 1991-92 में राजकोषीय घाटे में भारी कमी की गई तथा बाद के वर्षों में सकल राजकोषीय घाटे एवं सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात को खर्चे में कमी तथा सन 1990-91 से 1996-97 वर्षों में घाटे के मौद्रीकरण द्वारा कम किया गया। उल्लेखनीय है कि इस अवधि में केंद्र सरकार के राजस्व घाटे में भी कमी की गई। बजट असंतुलन एवं केंद्रीय सरकार के घाटे में कमी से मौद्रिक नीति के निर्माण में राजकोषीय नीति का प्रभाव कम हुआ तथा इसने रिज़र्व बैंक को वित्तीय प्रणाली सम्बंधी समिति (अध्यक्ष : एम.नरसिंहम, 1991) की सिफारिशों के अनुसार नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात एवं सांविधिक चलनिधि अनुपात में कमी करने में सहायता की जिससे वित्तीय प्रणाली के संसाधन मुक्त हुए जिनको वाणिज्यिक क्षेत्र को आबंटित किया जा सकता था। निर्यात की स्पर्धात्मकता को बनाए रखने के लिए रिज़र्व बैंक ने जुलाई 1991 में दो चरणों में रुपए का अवमूल्यन किया तथा मार्च 1992 में दोहरी विनिमय दर प्रणाली लागू की। इसने विदेशी मुद्रा भंडार की खस्ता हालत को सुधारने के लिए आयात नियंत्रण के उपाय भी किए। मांग एवं मुद्रास्फीति दबाव में कमी के लिए भी प्रयास किए गए। कालांतर में मार्च 1993 में रिज़र्व बैंक ने बाज़ार आधारित विनिमय दर अंगीकार की। स्थिरीकरण की समन्वित रणनीति एवं सुधार उपायों से 1990 के बाद के दशक के मध्य तक वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी हुई।

*मौद्रिक नीति के प्रत्यक्ष के बदले अप्रत्यक्ष उपकरणों का उपयोग*

7.83 सक्रिय राजकोषीय दबाव संबंधी उपायों, सांविधिक चलनिधि अनुपात को एक विवेकसंमत उपकरण के तौर पर प्रयोग करने के निर्णय तथा नकदी प्रारक्षित अनुपात के साथ-साथ उसमें कमी करने

**सारणी 7.5 : मौद्रिक नीति लिखत**

| लिखत/दशक | 1930द-1940द | 1950द | 1960द | 1970द | 1980द | 1990द | 2000द और अब तक |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
| आरक्षित नकदी निधि अनुपात | | | | Ö | Ö | Ö | Ö |
| सांविधिक चलनिधि अनुपात | | | | Ö | Ö | Ö | |
| स्थायी सुविधा | | Ö | निवल चलनिधि पर आधारित | क्षेत्र विशेष को पुनर्वित्त | क्षेत्र विशेष को पुनर्वित्त | क्षेत्र विशेष को पुनर्वित्त | |
| चयनात्मक ऋण नियंत्रण | Ö | Ö | Ö | Ö | Ö | महत्वहीन हटा दिया गया | |
| खुला बाज़ार परिचालन | | Ö | Ö | Ö | Ö | 1992-93 में पुनः शुरू | Ö |
| बैंक दर | | Ö | Ö | Ö | | पुनः शुरू | Ö |
| चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) के अंतर्गत रेपो/रिवर्स रेपो नीलामी | | | | | | | Ö |
| बाज़ार स्थिरीकरण योजना | | | | | | | Ö |

Ö लिखत का सक्रिय परिचालन दर्शाता है।

से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गईं कि रिज़र्व बैंक मुद्रा नीति के अप्रत्यक्ष उपकरणों को पुन:सक्रिय कर सका (सारणी 7.5)। रिज़र्व बैंक ने एक दशक में पहली बार बैंक दर को मौद्रिक नीति के उपकरण के तौर पर प्रयोग किया तथा मुद्रास्फीति के नियंत्रण हेतु सन् 1991 में उसमें 2 प्रतिशत बिंदु की वृद्धि की। चूंकि वांछित चलनिधि सुनिश्चित करने के लिए मुक्तबाज़ार परिचालन का प्रयोग किया जा सकता था, अतः बैंक ने मौद्रिक नीति प्रबंध हेतु मुक्त बाज़ार परिचालन उपकरण को पुनः सक्रिय किया। सरकारी प्रतिभूतियों पर बाज़ार आधारित ब्याज दर प्रणाली की शुरुआत तथा सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में पर्याप्त संस्थाओं के निर्माण के विकास से यह संभव हुआ। रिज़र्व बैंक ने भी बाज़ार में अस्थायी चलनिधि की अधिकता के अवशोषण के लिए सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री द्वारा रेपो की शुरुआत की जिसमें निश्चित अवधि के बाद लेनदेन को उलट दिया जाता है तथा प्रारंभ में यह अवधि बैंकों के प्रारक्षित प्रबंध के आवर्तन अर्थात् 15 दिन की रखी गई।

7.84 अभूतपूर्व मुद्रा प्रवाह तथा उससे उत्पन्न अधिक मुद्रा विस्तार के कारण मुद्रास्फीति दबाव को कम करने के लिए अप्रत्यक्ष उपकरणों का उपयोग 1993-95 वर्षों के दौरान भी जारी रहा। जब विनिमय दर का बाज़ार द्वारा निर्धारण होने लगा तथा चालू खाते में परिवर्तनीयता की ओर कदम उठाए जाने लगे तो शुरुआती दौर में विनिमय दर के स्थायीत्व के रिज़र्व बैंक द्वारा अधिक पूंजी प्रवाह का अवशोषण आवश्यक हो गया। पूंजी अंतर्प्रवाह के प्रभाव को नियंत्रित करने तथा मुद्रास्फीतिगत दबावों के निवारण हेतु रिज़र्व बैंक को अपने खाते में धारित सरकारी प्रतिभूतियों का मुक्त बाज़ार परिचालनों एवं रेपो के माध्यम से विक्रय करना पड़ा। इस प्रकार बैंक द्वारा मुक्त बाज़ार परिचालन के प्रयोग ने नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात में वृद्धि के स्थापन का कार्य किया तथा समग्र मुद्रा नियंत्रण की आवश्यकता का निवारण किया।

*मुद्रा नीति पर राजकोषीय बाध्यताओं में नरमी : 1994-2003*

7.85 इस दौर में मौद्रिक नीति प्रबंध की दक्षता में सुधार के लिए राजकोष घाटा एवं स्वचालित मुद्रा एवं राजकोष नीतियों का अनिवार्य संयुक्त मौद्रीकरण के विलगन के लिए व्यवस्था स्थापित करना लक्ष्य था। रिज़र्व बैंक तथा केंद्र सरकार के मध्य सितंबर 1994 में हुए ऐतिहासिक समझौते के कार्यान्वयन से तदर्थ खज़ाना बिल द्वारा राजकोषीय घाटे के स्वतः मौद्रीकरण की प्रक्रिया समाप्त कर दी गई। हालांकि मौद्रिक नीति का ध्यान मूल्य स्थायीत्व तथा अर्थव्यवस्था के विकास हेतु पर्याप्त वित्तपोषण दोनों लक्ष्यों पर रहा, परंतु बदलती परिस्थितियों के अनुसार उन पर दिए गए सापेक्ष जोर में परिवर्तन होता रहा स्वतः मौद्रीकरण में कमी के कारण मुद्रा नीति पर राजकोषीय नीति के वर्चस्व में काफी कमी हुई।हालांकि सन 1997-98 से राजकोष घाटे में वृद्धि होने लगी परंतु बाज़ार तथा राष्ट्रीय लघु बचत निधि से प्राप्त निरंतर वित्तीय सहायता से घाटे के मौद्रीकरण को नियंत्रित करने में मदद मिली। इसके विपरीत मुद्रा नीति को पूंजी प्रवाह तथा ऋण उठाव के आवर्तन से उत्पन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अनियंत्रित वातावरण में मौद्रिक तथा वित्तीय स्थायीत्व सुनिश्चित

करने के अलावा रिज़र्व बैंक को अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक ब्याज दर परिस्थितियों एवं सरकारी उधारों की लागत कम करने की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी उठानी पड़ी।

*तदर्थ खजाना बिलों को चरणबद्ध रूप से समाप्त करना*

7.86 चक्रवर्ती समिति की सिफारिशों के अनुरूप तथा 1980 के बाद के दशक के मध्य से प्राप्त प्रतिसूचना, (जब मुद्रा आपूर्ति का स्तर आर्थिक विकास दर तथा स्वीकार्य मुद्रास्फीति दर के अनुरूप था), के आधार पर रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक विस्तार को लक्ष्यबद्ध करने की संरचना को लागू किया। लक्ष्य के अनुपालन का निहितार्थ सरकारी घाटे के मौद्रीकरण को सीमित करना था। सक्रिय राजकोषीय संसाधनों तथा मुद्रा आपूर्ति को नियंत्रित करने हेतु रिज़र्व बैंक के प्रयासों के बावजूद सन् 1990 केबाद के दशक के प्रारंभ में तदर्थ खज़ाना बिल के अस्तित्व के कारण मौद्रीकृत घाटे पर तुरंत नियंत्रण नहीं किया जा सका। वास्तव में ऐसी स्थितियाँ आईं, जब राजकोषीय घाटा बढ़ा था, परंतु वर्ष के खत्म होते-होते इसको नियंत्रित किया गया। इसका संज्ञान लेकर सरकार एवं रिज़र्व बैंक के बीच सन् 1994 में समझौता हुआ जिसके अनुसार उनमें सन् 1996-97 के अंत तक तीन चरणों में तीन वर्षों की अवधि में तदर्थ खज़ाना बिलों को चरणबद्ध रूप में समाप्त करने के लिए सहमति बनी (बाक्स VII.5)।

7.87 तदर्थ खज़ाना बिलों के निर्गम की नियंत्रण प्रक्रिया से 1994-95 में मौद्रीकृत घाटे में भारी कमी आई तथा लगभग दो दशकों में पहली बार मुद्रा विस्तार का कारण घाटे का मौद्रीकरण नहीं था। चूंकि वर्ष के बड़े भाग में सरकार ने तदर्थ खज़ाना बिलों का प्रयोग नहीं किया जिससे तदर्थ खज़ाना बिल के माध्यम घाटे के मौद्रीकरण में भारी कमी आई तथा वह मार्च 1994 के अंत में 22.2 प्रतिशत से घटकर मार्च 1995 के अंत में 1.8 प्रतिशत रह गया। परंतु 1995-96 में वाणिज्यिक ऋण उठाव में भारी वृद्धि से केंद्र सरकार के राजकोष घाटे में कमी के

**बॉक्स VII.5**
**स्वत: मौद्रीकरण से अर्थोपाय अग्रिम तक की यात्रा**

मौद्रिक नीति को भारत सरकार के तदर्थ खजाना बिलों को समायोजित करते हुए स्वतः मौद्रीकरण की अनिवार्यतः का मार्च 1997 तक सामना करना पड़ा। सरकारी घाटे के इस अनियंत्रित स्वतः मौद्रीकरण पर रोक लगाने के उद्देश्य से, 9 सितंबर, 1994 को रिज़र्व बैंक और भारत सरकार के बीच हुए पहले अनुपूरक करार में तदर्थ खजाना बिलों के सृजन को अप्रैल 1997 से पूरी तरह समाप्त करने से पहले 1996-97 को समाप्त तीन वर्ष के दौरान उसकी सीमा पर रोक लगाने के लिए एक प्रणाली निर्धारित की गई । 1994-95 के दौरान यह सहमति हुई कि वर्ष के अंत तक 6000 करोड़ से अधिक तदर्थ निवल खजाना बिल जारी नहीं किया जाएगा, और वर्ष के दौरान उसकी राशि लगातार 10 दिनों तक 9,000 करोड़ रुपए से अधिक नहीं होगी। यह भी सहमति हुई थी कि यदि तदर्थ निवल खजाना बिल निर्धारित अवधि से अधिक दिन तक 9000 करोड़ रुपए से अधिक रहता है तो रिज़र्व बैंक तदर्थ खजाना बिलों की निर्दिष्ट स्तर से अधिक राशि को खजाना बिलों की नीलामी करके अथवा भारत सरकार की दिनांकित प्रतिभूतियों का विपणन करके स्वतः ही कम कर देगा। जहां वर्ष के अंत में यह सीमा 1995-96 तथा 1996-97 के लिए और कम करके 5000 करोड़ रुपए कर दी गई, वहीं इन दो वर्षों की 'भीतरी अवधि' के लिए यह सीमा 9,000 करोड़ रुपए ही रखी गई थी। यह सहमति हुई थी कि रिज़र्व बैंक द्वारा एक उपयुक्त दैनिक निगरानी प्रणाली लागू की जाएगी ताकि सरकार के समक्ष जारी निवल तदर्थ खजाना बिलों की अद्यतन स्थिति प्रस्तुत की जा सके। तदनुसार रिज़र्व बैंक की यह ज़िम्मेदारी थी कि वह सरकार को यह सूचित करे कि दैनिक आधार पर तदर्थ खजाना बिलों में कितनी निवल वृद्धि हुई है तथा कितने दिन वह निर्धारित स्तर से अधिक था, यह सूचना प्राप्त होने पर सरकार अपने अभिमत से रिज़र्व बैंक को अवगत कराती है तथा उसे नियमित करने या उस सीमा तक बाज़ार से उधार जुटाने के लिए अनुदेश जारी करती है।

रिज़र्व बैंक और भारत सरकार के बीच 6 मार्च 1997 को हुए द्वितीय अनुपूरक करार के अनुसरण मं, तदर्थ खजाना बिलों का निधीयन मार्च 1997 के अंत से पूरी तरह बंद कर दिया गया और उसके स्थान पर अप्रैल 1997 से 4.6 प्रतिशत ब्याज दर पर विशेष अदिनांकित प्रतिभूतियों में निधीयन किया जाने लगा जिसे अर्थोपाय अग्रिम (डब्ल्यूएमए) प्रणाली कहते हैं और जिसके शुरुआत के लिए 91 दिवसीय खजाना बिलों की नीलामी का अनुपात बढ़ा दिया गया । अर्थोपाय अग्रिम प्रणाली के अंतर्गत रिज़र्व बैंक छमाही आधार पर पूर्व घोषित सीमा तक, परस्पर सहमत ब्याज दर पर अल्पकालिक अग्रिम प्रदान करता रहा है जिसे तीन महीने के भीतर पूरी तरह से वापस करना होता है। भारत सरकार को ओवरड्राफ़्ट की भी अनुमति दी गई है किंतु उस पर अर्थोपाय अग्रिम ब्याज दर से ऊंची ब्याज दर लगाई जाती है, यह व्यवस्था 1 अप्रैल 1999 से लागू की गई है तथा यह पाबंदी है कि ओवरड्राफ़्ट की स्थिति लगातार अधिकतम 10 दिनों से अधिक नहीं होगी। यह भी सहमति है कि अर्थोपाय अग्रिम की 75 प्रतिशत की सीमा पूरी होने के बाद रिज़र्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों के नए निर्गम जारी करेगा यह भी सहमति है कि रिज़र्व बैंक के पास सहमत स्तर से अधिक सरकारी अधिशेष नकदी रहती है तो उसे वह स्वयं के पत्र (पेपर) में निवेश करेगी। अनुपयोगी कार्यों में इस्तेमाल के फलस्वरूप रिज़र्व बैंक के संविभाग में सरकारी प्रतिभूतियां कम होती गईं और दिनांकित प्रतिभूतियों में केंद्र सरकार की अधिशेष नकदी का निवेश को 10,000 करोड़ रुपए की उच्चतम सीमा (अक्तूबर 2004 में बढ़ाकर यह सीमा 20,000 करोड़ रुपए कर दी गई) की सहायता से आंशिक रूप से बहाल करने से पहले अप्रैल और जून 2004 के बीच स्थगित कर दिया गया था।

बावजूद सरकार के उधार कार्यक्रम को पूरा करने के लिए रिज़र्व बैंक को भारी मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियां खरीदनी पड़ीं तथा इससे घाटे के मौद्रीकरण में वृद्धि हुई। परंतु बाद में परिस्थितियां सामान्य हो गईं तथा 1996-97 के अंत तक ज़्यादा बाज़ार भागीदारी को परिलक्षित करते हुए तदर्थ खज़ाना बिलों का निवल निर्गम 1996-97 वर्ष के उत्तरार्द्ध के लिए नियत सीमा से काफी कम हो गया।

7.88 सन् 1997-98 में तदर्थ खज़ाना बिल की समाप्ति तथा अर्थोपाय अग्रिम द्वारा उसका स्थान लेना तीन प्रकार से बहुत मूल्यवान सिद्ध हुआ। प्रथम, नियंत्रित ब्याज दर की जगह बाज़ार आधारित ब्याज दर लागू होने से सरकार को ऋण कार्यक्रम की लागत के बारे में ज़्यादा परवाह हुई। जहां इससे ज़्यादा राजकोषीय अनुशासन की आशा हुई, बॉंड द्वारा वित्तपोषण से अधिक निजी पूंजी निर्माण के योग्य स्थितियों के निर्माण को बढ़ावा मिला। द्वितीय, इसने मौद्रिक नीति को राजकोषीय नीति की जकड़ से आजाद किया। तीसरे, इसने ब्याज दर को वित्तीय आस्तियों एवं अन्य आस्तियों के रूप में धन निवेश करने के अवसर मूल्य को दर्शाने के लिए उसकी आबंटन दक्षता को बढ़ाया (जालान, 2002)।

*राजकोष घाटे के कम मौद्रीकरण के अंतर्गत मौद्रिक नीति की कार्यनीति*

7.89 तदर्थं खजाना बिलों की समाप्ति तथा अर्थोपाय अग्रिम द्वारा राजकोष अनुशासन लागू करने की समन्वित रणनीति ने मौद्रिक प्रबंध को राजकोषीय घाटे के अनियंत्रित प्रत्यक्ष मौद्रिकरण की विवशता से मुक्त कर दिया। केंद्रीय सरकार एवं रिज़र्व बैंक के प्रतिनिधियों को मिलाकर अर्थोपाय अग्रिम प्रणाली के प्रबंध के लिए सन् 1997 में स्थापित केंद्र सरकार की नकदी एवं ऋण प्रबंध के लिए निगरानी दल प्रभावी नकदी प्रबंध के लिए समुचित रणनीति बनाने के अलावा मासिक राजकोषीय घाटा, ऋण कार्यक्रम की प्रगति, ऋण के उगाही के साधन तथा केंद्र सरकार की नकदी की स्थिति की समीक्षा करता था।। निरंतर बिक्री के लिए उपलब्ध 91 दिवसीय खज़ाना बिलों एवं तदर्थ खज़ाना बिलों के अभाव में सरकार के नकदी प्रबंध को आसान बनाने के लिए रिज़र्व बैंक ने सन् 1997-98 में केंद्र सरकार के 14 दिवसीय खज़ाना बिलों की नीलामी शुरू की, परिणामस्वरूप केंद्र सरकार की वित्तीय स्थिति में कुछ परेशानी के बावजूद अर्थोपाय अग्रिम सुविधा के अधीन आहरण निर्धारित सीमा के अंदर था, जिससे यह सिद्ध होता था कि सरकार के बाज़ार ऋण कार्यक्रम को बाज़ार का सशक्त समर्थन था। वास्तव में निरंतर राजकोषीय दबाव के बावजूद केंद्र सरकार को रिज़र्व बैंक ऋण में कमी आई तथा 1997-98 के बाद पहली बार सन 1999-2000 में अधिशेष की स्थिति आ गई।

**सारणी 7.6 : 91 दिवसीय तदर्थ खजाना बिलों के निवल निर्गम का पाक्षिक औसत**

(करोड़ रु.)

| राजकोषीय वर्ष | 1994-95 | 1995-96 | 1996-97 |
|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 |
| अप्रैल-जून | -1,593 | 10,398 | 13,654 |
| जुलाई-सितंबर | -4,864 | 12,445 | 9,299 |
| अक्तूबर-दिसंबर | -6,013 | 10,030 | 5,633 |
| जनवरी-मार्च | -919 | 8,844 | 2,861 |
| मार्च अंत | 1,750 | 5,965 | 4,685 |
| राजकोषीय वर्ष औसत$ | -3,249 | 10,280 | 7,612 |

@ भारिबैं अभिलेख के अनुसार $ लेख बंद होने के बाद
**स्रोत** : भा.रि.बैं. वार्षिक रिपोर्ट

7.90 सरकार को निवल रिज़र्व बैंक ऋण, की गतिविधियां जो राजकोषीय परिचालन के निवल मौद्रिक प्रभाव को दर्शाती हैं, उत्तरोत्तर रूप से रिज़र्व बैंक के प्राथमिक एवं द्वितीयक बाज़ार परिचालनों तथा सक्रिय सार्वजनिक ऋण प्रबंध की परस्पर अंतर्क्रिया पर निर्भर रहा तथा इससे अर्थोपाय अग्रिम आहरण की कम आवश्यकता पड़ी। इस प्रकार मुक्त बाज़ार परिचालनों माध्यम से रिज़र्व पर आए भार /ऋण के निजी आबंटन द्वारा होने वाले मौद्रीकरण का नियंत्रण किया जा सका। जहां प्राथमिक बाज़ार परिचालनों के लिए ऋण प्रबंध नीति लक्ष्यों यथा कम लागत पर राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण ने उत्प्रेरक कार्य किया, वहीं मुक्त बाज़ार परिचालनों के रूप में द्वितीयक बाज़ार परिचालनों के लिए मुद्रा प्रबंध लक्ष्यों ने उत्प्रेरणा दी।

*मौद्रिक नीति परिचालन प्रक्रियाओं का परिष्कार*

7.91 प्रत्यक्ष राजकोषीय प्रधानता से मुक्त होने पर, विशेष आर्थिक परिस्थितियों का ध्यान रखने के लिए अपनाए गए अल्पावधिक नीतिगत उपाय करते हुए, मौद्रिक नीति दीर्घावधि संरचनात्मक समस्याओं के समाधान पर ध्यान केंद्रित कर सकती थी। भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा बाज़ार निर्धारित विनिमय दर प्रणाली लागू होने पर राजकोषीय नीति के स्थान पर बाह्य प्रवाह मौद्रीकरण का स्रोत बना। अतः एक और मौद्रिक समग्रों पर मुद्रा प्राधिकारी के नियंत्रण पर पूंजी प्रवाह, विनिमय दर घट बढ़ तथा वित्तीय नवीकरण का प्रभाव बढ़ा तथा दूसरी ओर मुद्रा मांग की ब्याज-दर संवेदनशीलता बढ़ी जिससे मुद्रा, उत्पादन तथा मूल्यों के बीच के संबंध बदले। इन गतिविधियों के कारण मौद्रिकनीति परिचालन प्रक्रियाओं तथा आर्थिक विकास, मुद्रास्फीति एवं वित्तीय स्थिरता की प्राप्ति के लिए आवश्यक मध्यावधि लक्ष्यों के परिष्कार की आवश्यकता पड़ी। तदनुसार रिज़र्व

बैंक ने मौद्रिक लक्ष्य के दृष्टिकोण को त्याग दिया तथा मौद्रिक नीति के बहुसंकेतक दृष्टिकोण से निर्माण के लिए एक जिसमें अनेक संकेतकों यथा मुद्रा, बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदत्त ऋण से राजकोषीय स्थिति, व्यापार, पूंजी प्रवाह, ब्याज दर, मुद्रास्फीति दर, विनिमय दर, पुनर्वित्त तथा विदेशी मुद्रा लेन देन पर सूचनाएं शामिल हैं, की अधिक बारंबारता से निगरानी की जाने लगी।

7.92 समांतर रूप से वित्तीय लागतों के नियंत्रण मुक्त होने से मौद्रिक नीति के संप्रेषण माध्यमों में आए परिवर्तनों से यह आवश्यक हो गया कि मूल्यों एवं चलनिधि की मात्रा की समस्या के समाधान के लिए मौद्रिक नीति उपकरणों का प्रयोग किया जाए। रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक नीति के संचालन में अप्रत्यक्ष उपकरणों का प्रयोग जारी रखा। सन् 1997 से ब्याज दर के मध्यावधि संकेतक के रूप में बैंक दर को पुनःक्रियान्वित किया गया तथा रेपो दर सीमांत चलनिधि प्रबंध उपकरण के रूप में उभरी एवं यह आशा की गई कि मुद्रा बाज़ार दर इन दोनों दरों के बीच में घटती बढ़ती रहेगी। सन् 1990 के बाद के दशक के मध्य से रिज़र्व बैंक ने यह रणनीति लागू की है कि यदि बाज़ार स्थिति अनुकूल न हो तो वह सरकारी प्रतिभूतियों को स्वयं खपा लेता है/निजी बिक्री के माध्यम से स्वयं खरीद लेता है तथा अनुकूल बाज़ार परिस्थितियाँ होने पर उन्हें मुक्त बाज़ार परिचालन के माध्यम से बेच देता है। जहां तक प्रत्यक्ष उपकरणों का प्रश्न है, सांविधिक चलनिधि अनुपात को अक्तूबर 1997 में उसके सांविधिक रूप से निम्नतम स्तर पर यानी निवल मांग एवं मीयादी देयताओं के 25% तक के स्तर पर लाया गया तथा नकदी प्रारक्षित अनुपात को लगातार चरणबद्ध ढंग से कम करने तथा रिज़र्व बैंक की पुनर्वित्त के युक्तिसंगत बनाते जाने की नीतियां, विशिष्ट परिस्थितियों/ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए , कुछ अस्थायी उभयमार्गी घटबढ़ के अलावा जारी रखी गईं।

7.93 मुक्त बाज़ार परिचालन द्वारा प्राथमिक चलनिधि कठिनाइयों का सामना करने के लिए यह आवश्यक था कि रिज़र्व बैंक के पास अपने खाते में सरकारी प्रतिभूतियों का पर्याप्त संचय हो। सन् 1998-99 से लगातार मौजूद अधिक चलनिधि की स्थिति एवं प्राथमिक बाज़ार ने सरकारी प्रतिभूतियों के निर्गम उत्तरोत्तर बढ़ती सहभागिता तथा अधिक चलनिधि के अवशोषण के लिए मुक्त बाज़ार परिचालन विक्रय रिज़र्व बैंक के अपने खाते में उपलब्ध सरकारी प्रतिभूतियों के परिमाण में भारी कमी आई। सन् 1998-99 से मुक्त बाज़ार परिचालन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें विभिन्न परिपक्वता के खज़ाना बिलों का प्रयोग भी किया गया। ज्यों-ज्यों बाह्य पूंजी प्रवाह में वृद्धि हुई त्यों-त्यों इसकी विदेशी मुद्रा आस्तियों में बढ़ोतरी से इसके मौद्रिक प्रभाव को कम करने के लिए रिज़र्व बैंक ने जून 2000 से मु.बा. परिचालन के अनुपूरक के रूप में परिवर्तनीय चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) योजना शुरू की। चलनिधि समायोजन सुविधा योजना, जिसे केवल कुछ सीमा तक चलनिधि के प्रबंध के लिए शुरू किया गया था, दीर्घावधि चलनिधि अधिकता के प्रबंध का उपकरण बनी तथा अल्पावधि उपकरण के रूप में इसकी उपयोगिता का ह्रास हो गया।

## खज़ाना बिलों की भूमिका [19]

7.94 खज़ाना बिल, जो केंद्र सरकार[20] का महत्वूपर्ण अल्पावधि उपकरण है तथा बाज़ार के लिए सुविधाजनक जोखिम रहित अल्पावधि निवेश का माध्यम है, ने रिज़र्व के अल्पावधि चलनिधि प्रबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परंतु सन् 1990 के दशक तक खज़ाना बिल का (विशेषकर सन् 1965 से जब हर समय चालू निर्गम प्रणाली का प्रारंभ हुआ) मुक्त बाज़ार परिचालन के माध्यम से नम्य दर उपकरण के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सका। बाज़ार सहभागियों में यह प्रवृत्ति देखी गई कि वे अपने शुरुआती निवेश का रिज़र्व बैंक द्वारा पुनर्बट्टाकरण करवा लेते थे तथा इससे इसके सरकार के नकदी शेष के लिए जारी द्वारा धारित तदर्थ खज़ाना बिलों के अलावा रिज़र्व बैंक द्वारा निष्क्रय रूप से खज़ाना बिलों का अवशोषण किया जाता था। रिज़र्व बैंक बाहर बाज़ार न होने तथा सन् 1974 से बट्टाकरण की दर में नम्यता के अभाव से मौद्रिक उपकरण या दक्ष मुद्रा बाज़ार उपकरण के रूप में इसकी उपयोगिता सीमित हो गई। इसके अलावा सन् 1980 के दशक में प्रायः आभावी बट्टाकरण दर मुद्रास्फीति दर से नीचे गिर जाती थी तथा इसके कारण ब्याज की दर ऋणात्मक हो जाती थी।

7.95 सन् 1986 में 182 दिन के खज़ाना बिलों की नीलामी की जगह सन् 1990 दशक के प्रारंभ में खज़ाना बिलों का पूरी तरह नीलामी द्वारा बेचने तथा प्राथमिक व्यापारियों द्वारा बाज़ार आधारित दर पर खज़ाना बिलों के बट्टाकरण की प्रणाली शुरू की गई। इससे रिज़र्व बैंक के बाहर खज़ाना बिल बाज़ार के विकास में सहायता मिली तथा इससे मुक्त बाज़ार परिचालनों द्वारा बाज़ार में अल्पावधि चलनिधि के प्रबंध में खज़ाना बिल को मुद्रानीति के उपकरण के रूप

[19] इसमें सरकारी शेष की पूर्ति करने के लिए उन खजाना बिलों पर चर्चा केंद्रित की गई है जो तदर्थ खजाना बिल नहीं हैं। खजाना बिल बाज़ार के विकास के संबंध में विस्तृत चर्चा के लिए कृपया अध्याय VI देखें।

[20] रिज़र्व बैंक ने 1938-1950 की अवधि के दौरान राज्य सरकारों की ओर से खजाना बिलों की बिक्री की है।

में प्रयोग करने में आसानी हुई। इस चरण में खज़ाना बिल उपकरण के विकास का औचित्य यह था कि इससे सरकार को बाज़ार भाव पर अल्पावधि ऋण उपलब्ध होता था तथा इस प्रकार निर्धारित संदर्भ दर से मुद्रा नीति परिचालनों में सुविधा होती थी। एक ओर तदर्थ खज़ाना बिलों की समाप्ति तथा अर्थोपाय अग्रिम प्रणाली के अनुशासन के पालन तथा दूसरी ओर उभरती हुई चलनिधि परिस्थितियों के अनुरूप बाज़ार के लिए समुचित जोखिम रहित अल्पावधि शील्ड कर्व के विकास की आवश्यकता के कारण खज़ाना बिल के निर्गम का नियमित करना जरुरी था। अप्रैल 2004 से पूंजी प्रवाह से उत्पन्न चलनिधि के अवशोषण के लिए भी खज़ाना बिलों का प्रयोग किया जाता है।

## राज्य सरकारों के साथ रिज़र्व बैंक के संबंध

7.96 1 अप्रैल 2007 तक रिज़र्व बैंक का प्रांतीय सरकारों के साथ कोई सीधा संबंध नही था क्योंकि केंद्र सरकार राज्यों की अर्थोपाय आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। सन् 1937 में प्रांतीय (x)=(तत्कालीन प्रांतीय सरकारें)। स्वायत्तता तथा 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के बाद रिज़र्व बैंक ने प्रांतों / राज्यों के साथ उनके बैंकिंग कारोबार के लिए अलग-अलग करार किए। सामान्य एजेंसी एवं बैंकिंग कार्यों के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक सरकारों को ऋण उगाही में सहायता, राजस्व एवं खर्चों में अस्थायी असंतुलन के समय अर्थोपाय अग्रिम तथा काफी हद तक उनकी ओवरड्राफ़्ट की प्रवृत्ति का निभाव करता था।

7.97 राज्य सरकारों तथा रिज़र्व बैंक के बीच हुए अनुबंधों के अनुसार रिज़र्व बैंक राज्य सरकारों का सामान्य बैंकिंग कामकाज देखता है जिसके लिए राज्य सरकारें रिज़र्व बैंक के पास एक निर्धारित न्यूनतम राशि[21] जमा रखती हैं। अनुबंध के अधीन राज्य सरकारों का यह उत्तरदायित्व है कि वे न्यूनतम राशि में कमी होने पर अपने खज़ाना बिलों या रिज़र्व बैंक से अर्थोपाय अग्रिम लेकर इस कमी की पूर्ति करे। रिज़र्व बैंक द्वारा राज्य सरकारों को देय अर्थोपाय अग्रिम का परिमाण उनकी न्यूनतम जमाराशि के गुणांक तक सीमित था। रिज़र्व बैंक केंद्रीय प्रतिभूतियों की जमानत पर विशेष अर्थोपाय अग्रिम भी प्रदान करता है। इन सब सुविधाओं के बावजूद कुछ राज्य सरकारें प्रायः अर्थोपाय अग्रिम सीमा का उल्लंघन करके लंबे समय तक ओवरड्राफ़्ट लेती थीं। चूंकि राज्य सरकारें वर्षान्त तक अपने ओवरड्राफ़्ट को चुका नहीं पाती थीं, अतः वर्षांत में केंद्र सरकार राज्य सरकारों के अनधिकृत ओवरड्राफ़्ट स्वयं अंगीकार करती थी। इस प्रकार लिए गए ओवरड्राफ़्ट को केंद्र सरकार उक्त राज्य को देय सहायता राशि में उसी साल या अनेक सालों की अवधि में समायोजन कर लेती थी। कुछ विशेष मामलों में केंद्र सरकार ऐसे राज्यों को ओवरड्राफ़्ट के भुगतान के लिए विशेष ऋण भी प्रदान करती थी। 1960 के दशक के मध्य में राज्य सरकारों के ओवरड्राफ़्ट का दुष्प्रभाव भुगतान असंतुलन के कारण अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लेकर केंद्र सरकार की अपनी वित्तीय स्थिति को सुधारने के प्रयासों पर पड़ा। इसके अलावा चूंकि केंद्र सरकार का अपना बजट घाटे में था, अतः राज्य सरकारों के अनधिकृत ओवरड्राफ़्ट प्रायः तदर्थ खज़ाना बिलों के रूप में केंद्र सरकार के ऋण में जुड़ जाते थे। अतः यद्यपि रिज़र्व बैंक सीधे-सीधे राज्य सरकारों के घाटे का मौद्रीकरण नहीं करता था तथापि अप्रत्यक्ष तौर पर ऐसा मौद्रीकरण हुआ।

7.98 चूँकि ओवरड्राफ़्ट से आरक्षित मुद्रा में वृद्धि होती अतः राज्य सरकारों के वित्तीय आचरण में और सुधार के लिए अर्थोपाय अग्रिम एवं ओवरड्राफ़्ट योजना की समीक्षा के लिए रिज़र्व बैंक ने सन् 1971, 1978 एवं 1985 में तीन कार्यदल स्थापित किए। इन दलों ने रिज़र्व बैंक को यह सलाह दी कि वह अन्य के अतिरिक्त यदि ओवरड्राफ़्ट सात दिन से ज़्यादा समय तक बना रहे तो चेतावनी के बाद भुगतान का निलंबन, यदि ऋणग्रस्तता 45 दिन से ज़्यादा दिन तक, बावजूद इसके कि वह अर्थोपाय सीमा से कम है, जारी रहे तो राज्य सरकार को उपचारात्मक उपाय करने को कहे तथा यदि वह 15 प्रतिशत से बढ़ जाए तो उसे चेतावनी दे। यद्यपि ये सिफारिशें स्वीकार कर ली गई परंतु सन् 1985 तक रिज़र्व बैंक अंतिम दंड यानि भुगतान बंदी सभी राज्यों पर समान रूप से लागू नहीं कर सकता था। परिणामतः सरकारों को दी गई चेतावनी के बावजूद कई राज्यों ने लंबे समय ओवरड्राफ़्ट की सीमा का पालन नहीं किया। 2 अक्तूबर 1985 को ओवरड्राफ़्ट नियमन योजना के लागू होने के बाद ओवरड्राफ़्ट के लिए निर्धारित समय सीमा यानि लगातार सात कार्य दिवस के बाद रिज़र्व बैंक एवं उसकी एजेंसियों ने उन सरकारों की ओर भुगतान बंद कर दिया।

7.99 आय व्यय असंतुलन की समस्या के हल में संरचनात्मक कठिनाइयों तथा राजकोषीय एवं मौद्रिक प्रबंध से संबंधित समस्याओं

[21] अप्रैल 1937 में पहली बार न्यूनतम शेष 195 लाख रुपए रखा गया किंतु 1 अप्रैल 1938 से लागू हुआ। उसके बाद न्यूनतम शेष को बढ़ते क्रम में चार बार संशोधित किया गया -अप्रैल 1953 (4.00 करोड़ रुपए), मार्च 1967 (6.25 करोड़ रुपए), मई 1976 (13.00 करोड़ रुपए) और अप्रैल 1999 (41.04 करोड़ रुपए) । 1999 में रिज़र्व बैंक ने अर्थोपाय अग्रिम की न्यूनतम राशि की सीमा हटा दी है किंतु उसे संशोधित कर दिया है और न्यूनतम शेष को उसी आधार पर सामान्य अर्थोपाय अग्रिम से जोड़ दिया है।

को ध्यान में रखकर अर्थोपायों पर अनौपचारिक सलाहकार समिति की सलाह के अनुसार अप्रैल 1937 से फरवरी 1999 तक अस्तित्व में रही अर्थोपाय योजना में संशोधन किया गया। तदनुसार मार्च 1999 से सामान्य अर्थोपाय सीमा को न्यूनतम जमाराशि की बजाय समग्र राजस्व आय तथा व्यय के गतिमान औसत के आधार पर एक सूत्र के अनुसार नियत किया गया । इस सूत्र का आधारभूत औचित्य यह था कि यह राज्य के नकदी प्रवाह के समान व्यवहार करेगा तथा राज्य के आय में गिरावट के प्रभाव को निरस्त करेगा। नई योजना में विशेष अर्थोपाय अग्रिम की सीमा राज्य सरकार द्वारा धारित केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों एवं खज़ाना बिलों के सीधे अनुपात में बिना किसी सीमा के, नियत की गई। परंतु ओवरड्राफ़्ट नियमन के अनुशासन तंत्र को कठोर बनाया गया तथा यह निर्णय किया गया कि कोई भी राज्य 10 दिन (फरवरी 2001 से 12 दिन) से ज़्यादा ओवरड्राफ़्ट नहीं रखेगा अन्यथा रिज़र्व बैंक उसके भुगतान बंद कर देगा। ओवरड्राफ़्ट की सीमा सारे वर्ष में अनुमत सामान्य अर्थोपाय अग्रिम के बराबर निश्चित की गई तथा प्रथम उल्लंघन के अवसर पर चेतावनी एवं ओवरड्राफ़्ट को सीमा के अंदर लाने के लिए तीन कार्य दिन (फरवरी 2001 से 5 दिन) की छूट तथा उसके बाद भुगतान रोकना का प्रावधान किया गया अर्थोपाय अग्रिम पर बैंक दर से तथा ओवरड्राफ़्ट पर बैंक दर से 2 प्रतिशत ज़्यादा ब्याज वसूला जाता था। बजट लेन - देन की राशि के अनुसार न्यूनतम शेष का परिमाण भी बढ़ाया गया। यह भी निश्चय किया गया कि तीन वर्ष बाद इसकी समीक्षा की जाएगी।

7.100 यद्यपि अर्थोपाय अग्रिम का प्रावधान राज्यों के आय-व्यय में अस्थायी असंतुलन की समस्या से निपटने के लिए किया जाता था परंतु राज्यों द्वारा लंबे समय तक ओवरड्राफ़्ट का प्रयोग करने से अर्थोपाय की स्थिति दो ओवरड्राफ़्ट के बीच सुरक्षा जाल की जैसी हो गई। इसके बावजूद कई राज्यों की बिगड़ती आर्थिक स्थिति (भा.रि.बैंक 2003) के कारण अर्थोपाय सलाहकार समिति ने प्रचलित उदार व्यवस्था को चालू रखा। परंतु समिति ने अर्थोपाय अग्रिम सीमा को सिर्फ एक स्वतंत्र परिवर्तनीय अर्थात् राजस्व से संबंधित करके गणना सूत्र को सरल बनाया क्योंकि पूंजीगत व्यय को शामिल करने से विकृतियां पैदा होती थी। इसके अलावा समिति ने महसूस किया कि राजस्व संख्या एक पारदर्शी संख्या है तथा इससे राज्य की भुगतान क्षमता का सही अनुमान लगता है। तदनुसार रिज़र्व बैंक ने 3 मार्च 2003 को राज्यों की अर्थोपाय अग्रिम योजना में संशोधन किया[22]। विशेष अर्थोपाय अग्रिम सुविधा के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए उस पर सामान्य आर्थोपाय अग्रिम सुविधा की अपेक्षा कम ब्याज दर लागू की गई। * उपयोग की अवधि के अनुसार सामान्य अर्थोपाय योजना में भी भिन्न-भिन्न ब्याज दर लागू की कई * अर्थोपाय अक्रिम सुविधा के 90 दिन से ज़्यादा प्रयोग को हतोत्साहित करने के लिए।

7.101 सारांश में, सन् 2002-03 तक के राजकोषीय मुद्रा संबंध की विकास प्रक्रिया का तीन महत्वपूर्ण बिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रथम, भारत में योजनबद्ध विकास की शुरुआत के कारण हुई संसाधन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार कों प्रायः स्वचालित मौद्रिक निभाव की आवश्यकता हुई तथा बैंक का मुद्रा नीति पर नियंत्रण कम हुआ। 1960 के दशक में बैंकों के राष्ट्रीकरण से सरकार को अपनी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक संसाधनों पर नियंत्रण मिल गया। 1970 के दशक से मौद्रिक नीति उपकरणों का प्रयोग राजकोषीय घाटे के मौद्रीकरण से उत्पन्न मुद्रास्फीति को कम करने हेतु रक्षात्मक उपाय के रूप में किया जाता था। दूसरा महत्वपूर्ण बिंदु रिज़र्व बैंक एवं सरकार द्वारा प्रतिसूचना सहित मौद्रिक लक्ष्य दृष्टिकोण के विश्लेषण द्वारा राजकोषीय घाटे के मौद्रीकरण से उत्पन्न प्रभावों की पहचान। इस दृष्टिकोण के अनुसार मूल्य स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए आरक्षित मुद्रा के प्रसार को नियंत्रित करने हेतु सरकार को रिज़र्व बैंक के ऋण पर सीमा निर्धारित करने का प्रयास किया गया। सन् 1991 के आर्थिक संकट के बाद सरकार एवं रिज़र्व बैंक ने राजकोषीय सुदृढ़ीकरण एवं राजकोषीय घाटे के मौद्रीकरण में कमी के लिए संयुक्त मध्यावधि रणनीति अपनाई। सन् 1990 के दशक के प्रारंभ में राजकोषीय सुधारों ने तीसरे महत्वपूर्ण बिंदु के लिए स्थिति तैयार की जिसमें सरकार ने अपने 1994-95 के बजट में कहा 'सरकार को तदर्थ खज़ाना बिलों के माध्यम से रिज़र्व बैंक से असीमित ऋण लेकर नई मुद्रा का सृजन कर अपने घाटे की पूर्ति की छूट नही होनी चाहिए। इस व्यवहार से रिज़र्व बैंक की प्रभावी मौद्रिक नीति चलाने की क्षमता का ह्रास होता है।' तदनुसार, सरकार एवं रिज़र्व बैंक के बीच सन 1994 में हुए समझौते के अनुसार कालांतर में मार्च 1997 में तदर्थ खज़ाना बिलों के माध्यम से स्वतः मौद्रीकरण की रीति का अंत हुआ। तदर्थ खज़ाना बिलों के विलोपन तथा सक्रिय ऋण प्रबंध नीति के कारण रिज़र्व बैंक मौद्रिक नीति में अधिक नम्यता सामर्थ्य प्राप्त कर सका।

[22] संशोधित सामान्य अर्थोपाय अग्रिम राशि की सीमा की गणना पिछले तीन वर्ष की राजस्व प्राप्तियों के औसत का हिसाब में लेते हुए की गई है तथा गैर विशेष एवं विशेष श्रेणी के राज्यों के लिए क्रमशः 3.19 और 3.84 के उच्च गुणजों का इस्तेमाल किया गया है, ताकि सीमा की पर्याप्तता सुनिश्चित की जा सके।

## IV. सार्वजनिक ऋण प्रबंध का विकास

7.102 रिज़र्व बैंक सांविधिक प्रावधानों के अनुसार केंद्र सरकार का ऋण-प्रबंध तथा अलग-अलग अनुबंधों के अनुसार राज्य सरकारों का ऋण प्रबंध करता है। बैंक सरकार के वार्षिक ऋण कार्यक्रम के निर्माण में भी उसको परामर्श देता है। मुद्रा नीति के व्यापक लक्ष्यों के अनुरूप सरकारी ऋण की लागत में कमी करना भी वर्षों से सार्वजनिक ऋण प्रबंध नीति का लक्ष्य रहा है। इसीलिए रिज़र्व बैंक सरकार के साथ विचार विमर्श के बाद ऋण उगाही के समय, लिखतों का प्रकार, परिपक्वता तथा ऋण का मिश्रण आदि का निर्धारण करता है।

7.103 भारत में ऋण प्रबंध विकास का राजकोषीय मौद्रिक संबंधों से घनिष्ठ संबंध रहा है, जहां राजकोषीय नीति से ऋण के आकार का निर्धारण होता है वहीं ऋण प्रबंध नीति इसकी लागत कम रखने के लिए ऋण की संरचना तथा नीति एवं निवेशक आवश्यकताओं एवं चलनिधि स्थिति के आधार इसके परिपक्वता विन्यास का निर्धारण करती है। ऋण का मौद्रिक प्रभाव ऋण धारकों के समूह के मिश्रण पर विशेषतः रिज़र्व बैंक द्वारा धारित ऋण की मात्रा पर निर्भर है (तारापोर, के अनुसार 1999)। सन् 1990 दशक के प्रारंभ तक आवश्यक राजकोषीय नीति के अनुसार सरकारी घाटे के प्रत्यक्ष वित्तपोषण की बाध्यता (तदर्थ खज़ाना बिल के माध्यम से स्वतः तथा रिज़र्व बैंक द्वारा धारित सरकारी प्रतिभूतियां) एवं पूर्वनिश्चित बाज़ारेतर न्यून दरों पर सांविधिक नकदी अनुपात के माध्यम से बैंकों द्वारा आबद्ध क्रय द्वारा ऋणनीति अक्रिय रूप से परिचालित थी। ज्यों-ज्यों सार्वजनिक का स्तर बढ़ा तो राजकोषीय घाटे के भारी मौद्रीकरण, बैंकों के संसाधनों पर सांविधिक पूर्वाधिकार तथा सरकारी प्रतिभूतियों पर कृत्रिम रूप से निम्न ब्याज दरों को ब्याज दरों की आवधिक संरचना की विकृति के कारण निष्क्रिय ऋण प्रबंध को कठिन बनाया। तदनुसार, सन् 1991 के आर्थिक संकट की पृष्ठभूमि में सन् 1990 दशक के शुरू में सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के सुचारु विकास, सांविधिक पूर्वाधिकार में कमी, घाटे के मौद्रीकरण में भारी कमी तथा मुद्रानीति के अप्रत्यक्ष उपकरणों को सक्रिय करके सक्रिय ऋण नीति का एक युग आया। प्राथमिक निर्गम में नीलामी की शुरुआत करके सरकारी ऋण पर ब्याज को बाज़ार संमत बनाया गया जिससे रिज़र्व बैंक राजकोषीय सक्रियता पर बाज़ार अनुशासन लागू करने में सक्षम हुआ। तदर्थ खज़ाना बिलों के विलोपन तथा केंद्र सरकार के लिए अर्थोपाय अग्रिम सुविधा की शुरुआत से स्वतः मौद्रीकरण के आसान विकल्प को समाप्त किया गया। सरकारी प्रतिभूति बाज़ार एवं अन्य वित्तीय बाज़ारों को ज़्यादा समेकित बनाने हेतु नीति का नेतृत्व करने के अलावा रिज़र्व बैंक ने बाज़ारों को और पारदर्शी, दक्ष, न्याय संगत, एवं जोखिम रहित बनाने के लिए उनकी सूक्ष्म संरचना की जांच भी की। मुक्त बाज़ार परिचालन के उपकरण को पुनः सक्रिय बनाने में समर्थ बनाकर रिज़र्व बैंक के मौद्रिक एवं ऋण प्रबंध परिचालन में सहायता की।

### निष्क्रिय सार्वजनिक ऋण प्रबंध

7.104 सरकार के ऋण प्रबंधक के रूप में जहां रिज़र्व बैंक को यह सुनिश्चित करना था कि सरकारी सर्वश्रेष्ठ शर्तों पर मिले वहीं उद्योग एवं व्यापार पर उसका दुष्प्रभाव न्यूनतम रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर सरकारी बांड निर्गम कार्यनीति में परिवर्तन किए गए। विभिन्न प्रतिभूतियों के लिए खरीददारों में रुचि जगाने के लिए ऋणों का सावधानीपूर्वक नामकरण किया गया। सामान्यतया युद्ध के लिए धन जुटाने हेतु उस समय प्रचलित बैंक दर अर्थात् 3 प्रतिशत पर प्रतिभूतियां बेंची गई परंतु ऋण की परिपक्वता अविध के आधार पर मूल्यों में घट-बढ़ की गई। लघु, मध्यम एवं दीर्घावधि के ऋण जारी किए गए। भविष्य में ब्याज दर में भारी कमी की आशंका के कारण बाज़ार में दीर्घावधि प्रतिभूतियों की मांग ज़्यादा थी।

7.105 निजी क्षेत्र की ऋण आवश्यकतों से प्रतियोगिता से बचने के लिए सरकारी ऋण की बिक्री प्रायः मंदी के मौसम में की जाती थी। केंद्रीय प्रतिभूतियों की बिक्री राज्य ऋणों से पहले की जाती थी। सन् 1954 एवं 1963 में दो अवसरों पर रिज़र्व बैंक ने एक समय केंद्र एवं राज्य सरकारों के ऋण एक साथ जारी किए। दोनों ही अवसर पर उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली क्योंकि बहुत से राज्यों ने 'उनका अंश केंद्र द्वारा निर्धारित किया जाएगा' इस कारण ऋणों की बिक्री के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं किए। अतः रिज़र्व बैंक ने अलग-अलग ऋण जारी करने की रीति सन् 1964 में पुनः प्रारंभ कर दी।

7.106 प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल मे जारी एक मध्यावधि प्रतिभूतियों के बजाय द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में निवेशकों को व्यापक ऋण अवधि विकल्प उपलब्ध करने तथा असंतुलित पोर्टफोलिया की समस्या से बचने के लिए कई परिपक्वतावधियों की प्रतिभूतियां जारी की। परंतु ज़्यादा घनत्व अल्पावधि प्रतिभूतियां का या जो बाज़ार में ज़्यादा स्वीकार्य थीं। समय के साथ सरकार की प्रतिभूतियों के परिपक्वता विन्यास में निवेश योग्य धन की

प्रकृति, विभिन्न प्रतिभूतियों पर ब्याज दर, स्वामित्व पैटर्न एवं अवमूल्यन के जोखिम के अनुसार परिवर्तन आया। ऋण के एकसाथ भुगतान की समस्या से के कारण सरकार एवं रिज़र्व बैंक ने अधिक लागत के बावजूद प्रतिभूतियों की परिपक्वता अवधि बढ़ाई। प्रथम दीर्घावधि प्रतिभूति 20 वर्ष की परिपक्वतावधि के साथ 1959 में तथा 23 वर्ष की परिपक्वतावधि की प्रतिभूति 1962 में जारी की गई। सन् 1969-70 में परिपक्वता अवधि को बढ़ा कर 30 वर्ष किया गया।

7.107 सन् 1960 एवं सन् 1970 के दशकों में कुल प्रतिभूतियों में अल्पावधि प्रतिभूतियों का अनुपात घटता गया तथा दीर्घावधि प्रतिभूतियों का अनुपात बढ़ा गया। 1970 के दशक के मध्य में अल्पकालिक वृद्धि के अलावा मध्यावधि प्रतिभूतियों के अनुपात में कोई दर्शनीय परिवर्तन नहीं हुआ। सन 1974-75 में मूल्यों में वृद्धि के कारण अवमूल्यन का जोखिम करने के लिए रिज़र्व बैंक ने प्रचलित व्यवहार के विपरीत प्रतिभूतियों की परिपक्वतावधि में कमी की। सन 1984-85 में अधिकतम परिपक्वतावधि 28 वर्ष से बढ़ा कर 30 वर्ष की गई परंतु चक्रवर्ती समिति की सिफारिश के अनुसार इसे सन् 1986-87 में घटाकर 20 वर्ष कर दिया गया।

7.108 सन् 1970 के उत्तरार्ध तक सरकारी प्रतिभूतियों के ब्याज में वार्षिक वृद्धि की दर बहुत कम थी जिससे कूपन दर एवं सरकारी प्रतिभूतियों पर आय तथा अन्य लिखतों पर ब्याज दर में अमेल पैदा हुआ। ऋण प्रबंध से संबंधित समस्याओं के बारे में 1980 में स्थापित एक आंतरिक कार्यदल (अध्यक्ष : डी.सी.राव), सरकारी प्रतिभूतियों को अन्य लिखतों पर ब्याज दर के समान करने के लिए ब्याज दर में एकमुश्त तीन प्रतिशत की वृद्धि करने का सुझाव दिया। अतः रिज़र्व बैंक ने कूपन दर में, विशेष कर दीर्घावधि छोर पर अधिक वृद्धि की। दीर्घावधि प्रतिभूतियों का कूपन दर सन् : 1977-78 में 6.5 प्रतिशत से बढ़ाकर सन् 1985-86 में 11.5 प्रतिशत कर दिया। सरकारी प्रतिभूतियों की ब्याज दरों में इन वृद्धियों के बावजूद उन पर देय ब्याज दर बैंकों द्वारा 5 वर्ष की आवधिक जमा तथा उस तुल्य लिखतों पर देय ब्याज दर से कम थी। अतः सरकारी प्रतिभूतियों पर धनात्मक वास्तविक ब्याज दर सुनिश्चित करने के लिए चक्रवर्ती समिति ने सन् 1985 में अनेक सिफारिशें दीं। इन सिफारिशों के कार्यान्वयन से सन् 1990 दशक के शुरुआत में सरकारी प्रतिभूतियों की ब्याज दर को बाज़ार दरों के समतुल्य बनाने योग्य वातावरण तैयार हुआ।

*राज्य सरकार ऋण प्रबंध*

7.109 बाज़ार की कम अवशोषण शक्ति के कारण युद्धोत्तर काल में राज्य की प्रतिभूतियों की खपत युद्ध पूर्व काल से कम थी। राज्य सरकारों के ऋण की हामीदारी का प्रथा, जो रिज़र्व बैंक ने 1930 में शुरू की थी, को 1951 में समाप्त किया गया ता रिज़र्व बैंक राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों की बिक्री के लिए अनेक उपाय किए जिनमें सन् 1950 के दशक की शुरुआत से राज्य ऋणों की प्राथमिक बाज़ार में सीमित खरीद, राज्य ऋणों के बाज़ार को समतल बनाना तथा ऋणाकार को कम करना शामिल था।

7.110 बड़े योजना व्यय के लिए संसाधन जुटाने हेतु सन् 1950 के दशक के मध्य से राज्य सरकार के ऋणों में वृद्धि हुई। चूंकि राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों का ग्राहकवर्ग, जो चलनिधि की अपेक्षा ब्याज दर को अधिक महत्व देता था, सीमित था, अतः राज्य सरकारें अपनी प्रतिभूतियां बलपूर्वक अनिच्छुक खरीदरारों विशेषतः छोटे बैंकों तथा बीमा कंपनियों को बेचती थी जो निर्गम के तुरंत बाद बट्टाकरण द्वारा उन प्रतिभूतियों को बाज़ार में बेच कर सरकारी प्रतिभूति बाज़ार को अस्थिर बनाते थे। रिज़र्व बैंक, विशेषकर 1960 के दशक के प्रारंभ में अनबिके राज्य ऋणों को खरीदता था। सरकार की संकुचनकारी नीतियों के कारण सन् 1965-66 से रिज़र्व बैंक ने राज्यों के अनबिके ऋण को खरीदना बंद कर दिया तथा राज्यों को उसे आपस में बांट न लेने की सलाह दी।

## सार्वजनिक ऋण प्रबंध का पुनः सक्रियकरण

7.111 राजकोषीय प्रधानता के युग में सार्वजनिक ऋण प्रबंध की व्यापक समस्या ने दक्ष मुद्रा नीति प्रबंध को कठिन बनाया। सन 1990 के दशक के प्रारंभ में सरकारी ऋण के उत्तरोत्तर बाज़ार अभिमुख बनाने तथा मुद्रा नीति पर राजकोषीय वर्चस्व में कमी के लिए किए गए उपायों से रिज़र्व बैंक को सक्रिय ऋण प्रबंध एवं मुद्रा नीतियां लागू करने का अवसर मिला। सुधारपूर्व युग, जब सरकारी ऋण की लागत कम रखने के लिए प्रशासनिक आदेश द्वारा ब्याज दर को बाज़ार से कम रखा जाता था, के विपरीत नई प्रणाली, जिसमें बाज़ार आधारित दर पर उधार लिया जाता था, के कारण समग्र मुद्रा नीति के अधीन, रोलओवर जोखिम को ध्यान में रखकर सार्वजनिक ऋण की लागत कम रखने की ज़िम्मेदारी रिज़र्व बैंक पर आ गई। रिज़र्व बैंक को, सन् 1990 के दशक के उत्तरार्ध में बढ़ते राजकोष घाटे से सरकारी ऋण में वृद्धि के कारण, सक्रिय ऋण प्रबंध नीति का परिचालन करना पड़ा।

7.112 बढ़ते हुए बाज़ार ऋण के बावजूद सरकारी ऋण की ब्याज लागत कम रखने की चुनौती रिज़र्व बैंक के समक्ष आई। सन 1990 के दशक में ब्याज नियंत्रण के लक्ष्य की प्राप्ति में रिज़र्व बैंक के सामने दो चुनौतियां आई। प्रथम सरकारी प्रतिभूतियों की ब्याज दर को बाज़ार समान बनाने के लिए उनकी ब्याज दर को सुधार पूर्व की बाज़ार से कम दरों की अपेक्षा बढ़ाना पड़ा। दूसरे सरकारी घाटे के वित्तपोषण में सरकारी प्रतिभूतियों का अनुपात सन 1991-92 में 21 प्रतिशत बढ़कर 2004-05 में 80 प्रतिशत हो गया जिससे सरकारी घाटे के वित्तपोषण में प्रतिभूतियों के महत्वपूर्ण योगदान का पता चलता है। इस प्रकार रिज़र्व बैंक पर सरकारी ऋण के उत्तरोत्तर बढ़ते अनुपात का प्रबंध करने का उत्तरदायित्व डाला गया।

7.113 रिज़र्व बैंक ने सार्वजनिक ऋण के प्रबंध में चतुरंगी रणनीति अपनाई। प्रथम, लागत कम करने के लिए इसने प्राथमिक निर्गम के परिपक्वता विन्यास में परिवर्तन किया। दूसरे, ऐसे अवसरों पर जब बाज़ार परिस्थितियाँ समुचित दर पर ऋण निर्गम के अनुकूल नही थीं तो इसने अपने उपर भाग लेने / निजी बिक्री द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों को स्वयं खरीदा तथा बाज़ार में परिस्थितियां अनुकूल होने उनहें बाज़ार में बेच दिया। तीसरे रिज़र्व बैंक ने समय-समय पर निवेश आधार को व्यापक एवं गहन बनाकर तथा बाज़ार मांग के अनुरूप नई लिखते शुरू करके सरकारी प्रतिभूति बाज़ार को व्यापक एवं गहरा बनाने के प्रयास किए। अंततः पारदर्शिता सुनिश्चित करने तथा बाज़ार सहभागियों को अपना निवेश आयोजना सुधारने के लिए रिज़र्व बैंक सन् 2002-03 से केंद्र सरकार के बाज़ार ऋण के महत्वपूर्ण कार्यक्रम का अर्धवार्षिक कैलेंडर प्रकाशित करता है।

*सरकारी ऋण के परिपक्वता विन्यास एवं लागत का प्रबंध*

7.114 घरेलू सरकारी ऋण के बढ़ते परिमाण से वित्तीय बाज़ार में अनिश्चिता पैदा हुई जिसने एक ओर निवेशकों में अधिक ब्याज दर की आशा जगाई वहीं दूसरी ओर ऋण प्रबंधकों की आर्थिक विकास एवं वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने की क्षमता कम की। सरकारी ऋण के अधिक परिमाण से दीर्घावधि ब्याज दरों को कम करने की क्षमता कम होती थी, इसलिए सन् 1990 के दशक के पूर्वार्ध में रिज़र्व बैंक अल्पावधि बांड निर्गम किए । बाज़ारमत एवं पूर्वघोषित कूपन दर से बाज़ार संमत ब्याज दर संक्रमण के मद्देनज़र एवं आबद्ध निवेशक समूह से परे बाज़ार निर्माण के लिए अधिकतम परिपक्वतावधि को बीस वर्ष से घटा कर दस वर्ष तथा न्यूनतम परिपक्वतावधि को 5 वर्ष से घटाकर 2 वर्ष किया गया। परिणामस्वरूप मार्च 1991 से मार्च 1998 तक शेष प्रतिभूतियों में अल्पावधि प्रतिभूतियों (5 वर्ष से कम) का अनुपात तेजी से बढ़ा एवं दस वर्ष से अधिक परिपक्वतावधि की प्रतिभूतियों का अनुपात घटा। इससे अनिवार्यतः तेजी से भुगतान तारीखों का घनत्व बढ़ने तथा अल्पावधि निर्गमों के रोलओवर से रिज़र्व बैंक को चलनिधि प्रबंध में कठिनाइयाँ आई। भविष्य में भुगतान के ऐसे संकेद्रण से बचने के लिए रिज़र्व बैंक ने सन् 1998 में सरकारी पुनर्वित्तीकरण के खतरे से बचने के लिए दीर्घावधि प्रतिभूतियों के निर्गम द्वारा ऋण के परिपक्वतावधि विन्यास के दीर्घीकरण की सचेतन रणनीति अपनाई (सारणी 7.7)। तदनुसार शेष सरकारी ऋण में दस वर्षीय प्रतिभूतियों का अनुपात सबसे ज़्यादा हो गया। सन् 2002-03 में केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों की अधिकतम परिपक्वतावधि 25 वर्ष से बढ़ाकर 30 वर्ष की गई। शेष केंद्रीय सरकार ऋणों की भारित औसत परिपक्वतावधि सन् 1997-98 में 6.6 वर्ष से बढ़कर मार्चांत 2005 में 13.76 वर्ष हो गई। बाज़ार - संमत ब्याज दर पर परिपक्वतावधि अवधि का सफल दीर्घीकरण सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास एवं हालही के वर्षों में कम मुद्रास्फीति पर्यावरण के कारण संभव हुआ।

7.115 परिपक्वतावधि में वृद्धि से पहले रिज़र्व बैंक को उससे ऋण की लागत पर पड़ने वाले असर पर सावधानीपूर्वक विचार करना पड़ा क्योंकि परिपक्वतावधि बढ़ाने पर ब्याज दर बढ़ने की बहुत ज़्यादा संभावना होती है। परंतु सन् 1990 के दशक के प्रारंभ से जारी निम्न ब्याज दर परिस्थितियों के कारण रिज़र्व बैंक को भारित औसत ब्याज दर में सन् 1997-98 में12 प्रतिशत से 2004-05 में 6 प्रतिशत करने में सफलता मिली। सरकार के भारी ब्याज भुगतान भार, विशेषतः बढ़ती ब्याज दर पर्यावरण में, को कम करने के लिए रिज़र्व बैंक ने अस्थायी ब्याज दर बांड का निर्गम शुरू किया।

**सारणी 7.7 केंद्र सरकार की सरकारी प्रतिभूतियों की परिपक्वता स्थिति**

(प्रतिशत)

| वर्ष(मार्चांत) | बकाया स्टॉक | | |
|---|---|---|---|
| | 5 वर्ष से कम | 5-10 वर्ष | 10 वर्ष से अधिक |
| 1 | 2 | 3 | 4 |
| 1990-91 | 9 | 6 | 86 |
| 1997-98 | 41 | 41 | 18 |
| 2004-05 | 27 | 30 | 43 |

**स्रोत :** भा.रि.बैं. वार्षिक रिपोर्ट

*सरकारी प्रतिभूति बाज़ार का विकास*

7.116 सक्रिय ऋण प्रबंध नीति, वित्तीय बाज़ारों के विकास एवं एकीकरण तथा मुद्रानीति के अप्रत्यक्ष उपकरणों के परिचालन में सुगमता के लिए सरकारी प्रतिभूति बाज़ार का विकास बहुत महत्वपूर्ण है (रेड्डी 2002)। सरकारी प्रतिभूतियों के बेहतर बाज़ार ने जहां एक ओर रिज़र्व बैंक को ऋण प्रबंधक के रूप में सार्वजनिक ऋण की परिपक्वतावधि एवं लागत के इष्टतम प्रबंध की ज़्यादा स्वतंत्रता दी वहीं इसने मौद्रिक नीति को सांविधिक पूर्वाधिकार अनुपातों में कमी करने तथा (रंगराजन 1997) मुक्त बाज़ार परिचालन (या रेपो) का प्रयोग करने में समर्थ बनाया। मुद्रा प्रबंध में सन् 1992-93 में दिनांकित प्रतिभूतियों की नीलामी प्रक्रिया की शुरुआत से सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में बाज़ार संमत ब्याज दर के निर्धारण का मार्ग प्रशस्त हुआ। तत्पश्चात, रिज़र्व बैंक ने सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास के लिए अनेक उपाय किए। इनमें नई लिखतों की शुरुआत, सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में समुचित मध्यस्थता के लिए प्राथमिक व्यापारियों के रूप में समुचित आधारभूत संस्था प्रणाली का विकास, निवेशक आधार में वृद्धि से सरकारी प्रतिभूतियों के निपटान जोखिम में कमी के लिए सन् 1995 में अंतरण विरुद्ध भुगतान की प्रणाली की शुरुआत आदि शामिल हैं। और सुधार करते हुए रिज़र्व बैंक ने नए निर्गमों को महत्वपूर्ण परिपक्वतावधियों में एकीकृत करके संदर्भ प्रतिभूतियों का विकास किया तथा वर्तमान ऋणों के पुनर्निगम द्वारा चलनिधि एवं विनिमेयता में वृद्धि की तथा सरकारी प्रतिभूतियों की खुदरा बिक्री को प्रोत्साहन दिया। 1990 के दशक के अंत से विद्यमान सरकारी प्रतिभूतियों के मूल्य आधारित नीलामी द्वारा निर्गम से केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों निष्क्रिय एकीकरण की नीति का पालन कर रहा है[23]।

*राज्य सरकारों के बाज़ार उधार का प्रबंध*

7.117 बाज़ार ऋण कार्यक्रम के अधीन राज्यों को राशि का आबंटन केंद्र सरकार एवं योजना आयोग द्वारा रिज़र्व बैंक की सलाह से किया जाता है। सन् 1998 तक लागू ''परंपरागत सरणी पद्धति'' में रिज़र्व बैंक पूर्व निर्धारित कूपन दर तथा प्रत्येक राज्य के लिए पूर्व घोषित राशि के अनुसार सारे राज्यों के लिए दो या अधिक किस्तों में बांड निर्गम द्वारा संयुक्त ऋण कार्यक्रम का संपादन करता था। उच्च सांविधिक चलनिधि अनुपात तथा राज्य ऋणों के छोटे आकार के युग में ''परंपरागत सरणी पद्धति'' से राज्य ऋणों के प्राथमिक निर्गम को सफलता पूर्वक पूर्ण किया जाता था। परंतु सांविधिक चलनिधि अनुपात में उत्तरोत्तर कमी से बैंकों की धारण आवश्यकता में आई कमी तथा निवेशक समूह में विभिन्न राज्यों की छवि से 'परम्परागत किस्त विधि' में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। वित्तीय क्षेत्र सुधारों के परिप्रेक्ष्य में तथा बेहतर वित्त प्रबंध वाले राज्यों को बाज़ार दर पर सीधे बाज़ार से ऋण उठाव की सुविधा प्रदान करने हेतु सन् 1998-99 से राज्य सरकारों को नीलामी विधि[24] या (पूर्व घोषित राशि सहित परंतु बिना पूर्व निर्धारित ब्याज दर के) या असीमित बिक्री विधि (पूर्व निर्धारित कूपन दर पर असीमित एवं अघोषित राशि) से ऋण उगाहने का विकल्प दिया गया। जनवरी 1999 से राज्य सरकारों ने अपने बाज़ार ऋण के एक अंश के लिए नीलामी विधि अपनाई है। जिन राज्यों ने नीलामी विधि अपनाई उनके अनुभव से यह संकेत मिलता है कि कुछ राज्य प्रतियोगी दरों पर ऋण ले सकते थे परंतु अन्य को ऊंची ब्याज दर देनी पड़ती थी। निर्गमों के आकार एवं समय के अलावा राज्य की वित्तीय स्थिति की सुदृढ़ता एवं संभावनाएं, बजटेतर ऋण एवं आकस्मिक देयताओं जैसे प्रतिभूतियों सहित उसकी समग्र ऋणग्रस्तता, ऋणग्रस्तता को नियंत्रित करने के प्रयास तथा वचन प्रतिबद्धता का इतिहास आदि ब्याज दर फैलाव को निर्धारित करने वाले संभावित कारक थे। ऐसे कुछ राज्यों, जिन्होंने परिवर्तनीय नीलामी विधि का विकल्प नहीं चुना, के बारे में रिज़र्व बैंक ''परंपरागत सरणी पध्दति'' का प्रयोग करता रहा क्योंकि उसे उन राज्यों के लिए अच्छा एवं कम लागत वाला समझा गया। परंतु चूंकि बैंक और वित्तीय संस्थाएं निवेश संबंधी निर्णयों के लिए राज्य सरकारों के पिछले वित्तीय आचरण, विशेषतः अपने प्रत्याभूत बांडों की चुकौती तथा राज्य सरकार की प्रतिभूतियों की चलनिधि पर विचार करते हैं इसलिए रिज़र्व बैंक ने अंब्रेला ''समग्र उधार राशि जुटाने'' (अंब्रेला) की विधि शुरू की, जिसमें पूर्व घोषित ब्याज दर पूर्वघोषित राशि का ऋण राज्यों के अलग ऋण राशि की घोषणा किए बिना ऋण उगाही की जाती है। राज्य सरकारों की ऋण शोधन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सन् 1999-2000 में 'एकीकृत ऋण शोधन' की स्थापना की गई जिसमें

[23] सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास क्रम पर अध्याय VI में चर्चा की गई है।

[24] नीलामी पद्धति में राजे को स्वविवेक से नीलामी के माध्यम से उन्हें आबंटित एमपीबी के 5-35 प्रतिशत तक राशि जुटाने की अनुमति दी गई है।

प्रत्येक राज्य सरकार अपनी शेष ऋण राशि के 1 से 3 प्रतिशत रकम इस निधि में जमा करते थे तथा उस राशि का निवेश भारत सरकार की प्रतिभूतियों में किया जाता था।

7.118 राज्यों के बाज़ार उधार कार्यक्रम की सफल पूर्ति के लिए प्राथमिक व्यापारियों द्वारा ऋण हामीदारी की संभावनाएं, नमनीय पध्दति द्वारा राज्यों को सीमा से ज़्यादा ऋण लेने की अनुमति, राज्यस्तरीय संस्थाओं के राज्य सरकार द्वारा प्रत्याभूत बांडों की अधिशेष राशि का भुगतान न करने वाले राज्यों को बाज़ार पहुंच में कठिनाई, मौद्रिक नीति प्रबंध एवं ऋण प्रबंध को अलग-अलग करने तथा उसके द्वारा राज्य सरकारों के ऋण के लिए अलग से उधार जुंटाने की प्रणाली का विकास आदि मामलों का समाधान आवश्यक है।

*लोक ऋण प्रबंध के लिए रिज़र्व बैंक का सलाहकार दृष्टिकोण*

7.119 जैसा पहले संकेत दिया गया है, केंद्र सरकार के नकदी एवं ऋण प्रबंधक पर निगरानी दल केंद्र सरकार की नकदी एवं उधार स्थिति से संबंधित प्रासंगिक परिवर्तियों की आवधिक समीक्षा द्वारा सन 1997 से केंद्र सरकार के अर्थोपाय अग्रिम प्रणाली का प्रबंध कर रहा है। इसके अलावा परामर्श करते हुए सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास हेतु जनवरी 1997 में एक सरकारी प्रतिभूति तकनीकी परामर्शदात्री समिति की स्थापना की गई। यह समिति सरकारी प्रतिभूति बाज़ार से संबंधित नीतिगत मामलों पर सलाह देती रही है।

7.120 सारांश में, मौद्रिक नीति की परिचालन प्रक्रिया में परिवर्तनों एवं वित्तीय बाज़ारों, संस्थाओं एवं लिखतों के विकास ने वर्षों से रिज़र्व बैंक की विकसित होती ऋण प्रबंध कार्यनीति को प्रभावित किया है। सन् 1990 के दशक से पहले रिज़र्व बैंक की निष्क्रिय ऋण प्रबंध नीति से वित्तीय क्षेत्र द्वारा बाज़ार से कम ब्याज दर पर अनिवार्य सरकारी प्रतिभूति धारण से वित्तीय दमन हुआ। परिणामस्वरूप, वित्तीय क्षेत्र द्वारा स्वैच्छिक निवेश के लिए रिज़र्व बैंक ने बाज़ार तंत्र के संस्थानीकरण द्वारा अधिक सक्रिय ऋण प्रबंध नीति अपनाई। इससे अप्रत्यक्ष उपकरणों, जैसे मुक्त बाज़ार परिचालन जिससे मौद्रिक नीति संप्रेषण के ब्याज दर माध्यम को सक्रिय किया गया, के माध्यम से मौद्रिक नीति परिचालन संभव हुआ। परंतु बाज़ार संमत ब्याज दर के अंगीकरण से सरकारी ऋण की लागत बढ़ी जिससे सरकारी ऋण की परिपक्वतावधि को कम करने की नीति अपनाने की आवश्यकता पड़ी। सन् 1990 के बाद के दशक के अंत में भुगतान के सकेंद्रीकरण से उत्पन्न ऋणशोधन दबाव के नरम ब्याज दर एवं न्यून मुद्रास्फीति आशा के कारण परिपक्वतावधि को लंबा करने की नीति अपनाई गई। रिज़र्व बैंक ने सरकारी प्रतिभूतियों की विक्रय-योग्यता को बढ़ाने एवं मूल्य खोज की प्रक्रिया को सुधारने के लिए मूल्य आधारित नीलामी द्वारा महत्वपूर्ण प्रतिभूतियों के पुनर्निर्गम द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गम का एकीकरण प्रारंभ किया। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा ज़्यादा सक्रिय ऋण प्रबंध नीति के कारण मौद्रिक नीति की परिचालन प्रक्रिया में क्रमिक बदलाव लाकर सन् 1990 केबाद के दशक के अंत में एकाधिक संकेतक दृष्टिकोण अपनाया गया जिसमें नीति परिदृश्य के निर्माण के लिए राजकोषीय संकेतकों सहित उच्च बारंबारता वाले संकेतकों में मात्रात्मक एवं दरात्मक परिवर्तियों की घटबढ़ पर निगरानी रखी जाती थी। इस संदर्भ मं मुद्रा एवं ऋण प्रबंध मामलों में सरकार एवं रिज़र्व बैंक के बीच तकनीकी समन्वय के लिए केंद्र सरकार की नकदी एवं ऋण प्रबंध की निगरानी के लिए एक दल के रूप में एक तंत्र अप्रैल 1997 में स्थापित किया गया। बाज़ार भावना के स्थिरीकरण के लिए रिज़र्व बैंक ने सन् 2002-03 से सरकारी प्रतिभूतियों की नीलामी की पूर्वघोषणा के संकेतक कैलेंडर के प्रकाशन की प्रणाली शुरू की। परंतु सरकारी ऋण की नीलामी से पहले रिज़र्व बैंक बाज़ार की स्थिति का जायज़ा लेता है। राजकोषीय सुदृढ़ीकरण से उत्पन्न सहायक पर्यावरण से रिज़र्व बैंक की सार्वजनिक ऋण प्रबंध भूमिका को और बल मिला है।

## V. राजकोषीय विधि निर्माण मुद्रा एवं ऋण प्रबंध (2003-2005)

### नियम आधारित राजकोषीय समेकन का परिचालन

7.121 राजकोषीय स्थिति में गिरावट तथा सरकारी प्रशासन के बढ़ते अधिव्यय अपबचत के कारण, विशेषतः भारत के जी-20 दल का सदस्य बनने के बाद, भारतीय नियमों एवं व्यवहारों को अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाने की आवश्यकता के मद्देनज़र केंद्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर लोकवित्त की स्थिति सुधारने पर ध्यान देने की अनिवार्यता बढ़ी (रेड्डी 2000)। तदनुसार सरकार ने राजकोषीय प्रणाली के विभिन्न पहलुओं की समीक्षा एवं राजकोषीय जवाबदेही सुनिश्चित करने हेतु कानून का मसौदा सुझाने के लिए जनवरी 2000 में राजकोषीय जवाबदेही विधायी समिति स्थापित की (अध्यक्ष : ई.ए.एस.शर्मा)। सन् 2000-01 के संघीय बजट में, राजकोष घाटे के मध्यावधि प्रबंध के परिप्रेक्ष्य में राजकोषीय जवाबदेही अधिनियम में निहित एक संस्थागत तंत्र की आवश्यकता को रेखांकित किया गया। रिज़र्व बैंक ने तकनीकी सामग्री उपलब्ध कर राजकोष उत्तरदायित्व विधेयक की तैयारी में सहायता की। दिसंबर 2000 में राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध

(राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध) विधेयक की प्रस्तावना, जिसमें राजकोषीय घाटे के मध्यावधि प्रबंध की शुरुआत के लिए विधि एवं संस्थागत संरचना का प्रस्ताव था से नियम आधारित राजकोषीय समेकन की नीयत झलकती है। अगस्त 2003 में पारित राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम से 2003-04 में राजकोषीय समेकन की शुरुआत हुई। राजस्व वृद्धि एवं खर्च घटाने के उपायों के संयोग तथा विनिवेश प्रक्रिया से अधिक आय से सुधार प्रक्रिया की शुरुआत के बाद पहली बार केंद्रीय सरकार के घाटे के सारे महत्वपूर्ण संकेतक पहली बार बजट अनुमानों से कम हुए। जुलाई 2004 में राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम एवं नियमों की अधिसूचना से राजकोषीय विवेकसंमतता के प्रति निष्ठा का और प्रदर्शन हुआ, जिससे सन् 2004-05 से संघीय बजट को और युक्तियुक्त बनाया गया (बाक्स VII.6)।

7.122 राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम के मार्गदर्शन में सन् 2004-05 वित्तीय वर्ष के दौरान राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम / नियमों में निर्धारित न्यूनतम स्तर से ज़्यादा तेजी से गिरावट आने से केंद्र की वित्तीय स्थिति में सुधार हुआ। उस वर्ष में देयताओं में हुई वृद्धि राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध द्वारा निर्धारित सीमा से कम थीं (सारणी 7.8)। केंद्र सरकार एवं राज्यों के चयनित प्रतिनिधियों के एक अंतरसंस्था कार्यदल (2005) को भी रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकारों के लिए एक आदर्श राजकोषीय जवाबदेही विधि के निर्माण में तकनीकी सहायता दी।

## बॉक्स VII.6
## राजकोषीय जवाबदेही कानून बनाने की दिशा में प्रगति

केंद सरकार के उधार पर उच्चतम सीमा लगाने के लिए संवैधानिक प्रावधान (अनुच्छेद 292) किए जाने की आवश्यकता की शुरुआत काफी समय पहले 1957-58 में हुई थी जब बजट सुधार से संबंधित प्राक्कलन समिति द्वारा ऐसा प्रावधान करने का मत व्यक्त किया गया था। तथापि, सरकारी उधार को सीमित करने के संवैधानिक प्रावधान को कानून के रूप में लागू नहीं किया जा सका क्योंकि सरकार ने इसका विरोध करते हुए दावा किया है कि यह प्रावधान 'आज्ञात्मक' है न कि 'अनिवार्य' । इसके अलावा, सरकार का मत है कि बजट के संसदीय अनुमोदन का आशय उधार तथा घाटे के वित्तपोषण (बजट में स्पष्ट रूप से उल्लिखित) का अनुमोदन है तथा कानूनी सीमाएं अनिवार्य रूप से ऊंची एवं व्यापक होनी चाहिए जो वस्तुतः कोई पाबंदी नहीं लगाती है। रिज़र्व बैंक को सामान्यतया इससे कोई मतभेद नहीं है, यद्यपि 1964 में लोक लेखा समिति की 9वीं रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए रिज़र्व बैंक ने सरकार से आग्रह किया था कि वह सरकारी उधार पर खास तौर पर संसदीय प्रभुत्व के सिद्धांत को मान्यता देने के लिए 'सावधानीपूर्वक विचार' करे। प्राक्कलन समिति 1991-92 ने सरकारी उधार पर कानूनी बंदिश लगाने का मामला पुनः उठाया किंतु उसकी आवधिक समीक्षा किए जाने की सिफारिश की जिसका सरकार ने तीन आधारों पर विरोध किया। पहला, संवैधानिक सीमा में केवल बाज़ार उधार, खजाना बिल तथा बाह्य ऋण आते हैं न कि भारत के लोक लेखा के अंतर्गत लिए गए उधार। दूसरा, भारत की समेकित निधि और भारत के लोक लेखा के अंतर्गत नई देयताओं की जमानत पर सरकारी उधार का जीडीपी की तुलना में अनुपात के रूप में निर्धारण परिचालन की दृष्टि से संभाव्य नहीं है क्योंकि जीडीपी की स्थिति विलंब से उपलब्ध हो ती है। अंतिम, कोई भी सीमा जब निर्धारण से अधिक हो जाए तो उसे यथासमय नियमित किया जाना जरूरी होता है जो अनुदान पर किए गए अत्यधिक व्यय के मामले में संसदीय मतों की वर्तमान प्रणाली में कोई सुधार करने जैसा नहीं होगा। रिज़र्व बैंक ने भी अन्य देयताओं, अनुषंगी देयताओं तथा समग्र लोक क्षेत्र घाटा से संबंधित जानकारी को संसद के समक्ष अनिवार्य रूप से प्रकट करते हुए संवैधानिक सीमा के भीतर लोक ऋण पर सीमा निर्धारित करने का मामला उठाया था (भारिबैं 1997 क)।

राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन (एफआरबीएम) विधेयक दिसंबर 2000 में लाया गया था और उसमें कुछ संशोधन के बाद एफआरबीएम अधिनियम 2003 को 26 अगस्त, 2003 को पारित किया गया तथा एफआरबीएम नियमावली, 2004 सहित 5 जुलाई, 2004 को अधिसूचित किया गया। इस अधिनियम में कई पीढ़ियों की समानता की परस्पर भावनाएं निहित हैं और 31 मार्च 2008 तक (वित्त अधिनियम, 2004 द्वारा 31 मार्च 2009 तक अवधि बढ़ाई गई) राजकोषीय घाटे को कम करते हुए तथा राजस्व घाटे को समाप्त करते हुए दीर्घकालिक समष्टिगत आर्थिक स्थिरता का प्रावधान किया गया है। हालांकि ये घाटे, राष्ट्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय आपदा अथवा अन्य अपवादात्मक परिस्थितियों के आधार पर लक्ष्य से अधिक हो सकते हैं। इस अधिनियम में प्राप्तियों तथा भुगतान में अस्थाई असंतुलन को पूरा करने के लिए अर्थोपाय अग्रिम लेना अथवा अपवादात्मक परिस्थितियों को छोडकर केंद्र द्वारा रिज़र्व बैंक से वर्ष 2006-07 से सीधे उधार लेने पर पाबंदी है। तथापि, रिज़र्व बैंक द्वितीयक बाज़ार में प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय कर सकता है। अधिनियम में यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि बजट अनुमान की तुलना में केंद्र सरकार के वित्त की स्थिति की तिमाही सूचना दी जाए। एफआरबीएम नियमावली, 2004 में 31 मार्च 2008 तक की अवधि में घाटे के प्रमुख संकेतकों में चरणबद्ध रूप से कमी करने के वार्षिक लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं तथा सरकारी गारंटियों एवं अतिरिक्त देयताओं पर उच्चतम सीमा तय कर दी गई है। एफआरबीएम नियमावली, 2004 के अनुसार संघ के 2004-05 तथा 2005 के बजट में समष्टिगत आर्थिक संरचना वक्तव्य, मध्य कालिक राजकोषीय नीतिगत वक्तव्य तथा राजकोषीय नीति प्रणाली वक्तव्य प्रस्तुत किए गए। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003 के कार्यान्वयन से संबंधित केंद्र सरकार के कार्यदल (अध्यक्ष : विजय केलकर) ने राजकोषीय नीतियों के लिए मध्यावधि ढांचा तैयार किया है ताकि एफआरबीएम उद्देश्यों को 2008-09 तक प्राप्त किया जा सके।

**सारणी 7.8 : केंद्र सरकार के लिए एफआरबीएम नियमावली**

| पैरामीटर | राजकोषीय जबाबदेही और बजट प्रबंधन (एफआरबीएम) हेतु प्रावधान | 2004-05 |
|---|---|---|
| सकल राजकोषीय घाटा (जीएफडी) | वर्ष 2004-2005 से शुरू करके, प्रत्येक वर्ष सघउ के 0.3 प्रतिशत या उससे अधिक कम करना, ताकि यह मार्च 2008 के अंत तक सघउ के 3 प्रतिशत से अधिक न हों (बाद में इसे मार्च 2009 तक बढ़ा दिया गया है) । | वर्ष 2003-2004 की तुलना में संशोधित अनुमान (सं.अ.) में सघउ के 0.3 प्रतिशत तक तथा 2003-2004 की तुलना में अनंतिम लेखे में 0.4 प्रतिशत की कमी की गई। |
| राजस्व घाटा (आरडी) | वर्ष 2004-2005 से शुरू करके, प्रत्येक वर्ष के अंत में सघउ के 0.5 प्रतिशत या उससे अधिक कम करना, ताकि 31 मार्च 2008 तक आरडी को समाप्त कर लिया जाए, जैसा कि एफआरबीएम अधिनियम में निर्धारित किया गया है) बाद में इसे मार्च 2009 के अंत तक बढ़ा दिया गया है। | वर्ष 2003-2004 की तुलना में संशोधित अनुमान (सं.अ.) में सघउ के 0.9 प्रतिशत तक तथा 2003-2004 की तुलना में अनंतिम लेखे में 1.0 प्रतिशत की कमी की गई। |
| संपार्श्विक देयताएं | केंद्र सरकार वर्ष 2004-2005 के प्रारंभ से किसी भी वित्तीय वर्ष में ऐसी संचित राशि को गारंटी उपलब्ध नहीं कराएगा जो सघउ के 0.5 प्रतिशत से अधिक हो। | संघीय बजट 2005-2006 में गारंटियों के संबंध में प्रस्तुत की गई जानकारी राजकोषीय वर्ष 2003-2004 से संबोधत थी। |
| अतिरिक्त देयताएं | वर्ष 2004-2005 में अतिरिक्त देयताएं (वर्तमान विनिमय दर पर बाह्य ऋण सहित) सघउ के 9 प्रतिशत से अधिक न हों बाद के प्रत्येक वर्ष में सघउ के 9 प्रतिशत की सीमा को क्रमिक रूप से सघउ के कम से कम एक प्रतिशतता अंक कम किया जाएगा। | प्रारंभिक अनुमान में सघउ का 7.8 प्रतिशत |

## नियम आधारित राजकोषीय समेकन की संरचना में मौद्रिक नीति

7.123 भले ही मौद्रिक नीति को राजकोषीय प्रधानता से छुटकारा मिला, परंतु उसे भारी पूंजी प्रवाह से उत्पन्न चलनिधि अधिकता से उत्पन्न चुनौती का समाना करना पड़ा। रिज़र्व बैंक ने चलनिधि के अवशोषण, बाह्य ऋण की समयपूर्व चुकौती एवं विदेशी मुद्रा लेन-देन को उदार बनाने की नीतियों से इस चुनौती का सामना किया। इसके अलावा खज़ाना बिलों के अधिक निर्गम एवं ऋण अंतरण योजना के परिचालन से सन् 2003 से केंद्र सरकार के खाते में काफी बड़ी राशि में नकदी शेष एक निरंतर लक्षण बना तथा उसके द्वारा अर्थोपाय ऋण का उपयोग लगभग खत्म हो गया (चार्ट VII.1)।

7.124 रिज़र्व बैंक एवं केंद्र सरकार के बीच सन् 1997 में हुए अनुपूरक अनुबंध के अनुसार केंद्र सरकार सन् 1997-98 से अपने अधिक नकदी शेष को रिज़र्व बैंक से अपनी प्रतिभूतियों की खरीद में निवेश करती है। रिज़र्व बैंक ने केंद्र सरकार की 4.6 प्रतिशत विशेष अहस्तांतरणीय प्रतिभूतियों के सारे स्टाक को 2003-04 वर्ष तक बिक्री योग्य प्रतिभूतियों में परिवर्तित करने की नीति चलाई ताकि मुक्त बाज़ार परिचालन के लिए रिज़र्व बैंक के खाते में प्रतिभूतियों की पर्याप्त मात्रा सुनिश्चित की जा सके। परंतु पूंजी अंतर्प्रवाह में भारी वृद्धि एवं उसके मौद्रिक प्रभाव के अवशोषण के मुक्त बाज़ार परिचालन से रिज़र्व बैंक का सरकारी प्रतिभूति भण्डार में भारी कमी आई। इससे पूंजी अंतर्वाह से उत्पन्न अल्पावधि चलनिधि के प्रबंध के लिए चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) के

**चार्ट VII.1 : केंद्र का दैनिक औसत नकदी शेष**

परिचालन की आवश्यकता पड़ी। चलनिधि समायोजन सुविधा के परिचालन के पश्चात् सन् 2003-04 में रिज़र्व बैंक की मुक्त बाज़ार बिक्री और गिल्ट पोर्टफोलियों में वृद्धि का अनुपात औसत 90 प्रतिशत से घटकर लगभग 50 प्रतिशत रह गया (भा.रि.बैंक 2004)।

7.125 निरंतर पूंजी प्रवाह एवं रिज़र्व बैंक के खाते में उपलब्ध प्रतिभूतियों में क्षरण के कारण रिज़र्व बैंक ने अवशोषण के दूसरे उपकरणों की जांच की। इस संदर्भ में रिज़र्व बैंक का अवशोषण के उपकरणों संबंधी

**सारणी 7.9 : रिज़र्व बैंक में केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों का स्टॉक**

(करोड रुपए)

| राजकोषीय वर्ष | बकाया दिनांकित प्रतिभूतियां | तदर्थ खजाना बिलों के बदले में जारी विशेष प्रतिभूतियों की बकाया रकम | कुल बकाया |
|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 |
| 1996-97 | 6,666 | 1,21,818 | 1,28,484 |
| 1997-98 | 31,977 | 1,01,818 | 1,33,795 |
| 1998-99 | 42,212 | 1,01,818 | 1,44,030 |
| 1999-2000 | 35,190 | 1,01,818 | 1,37,008 |
| 2000-01 | 41,732 | 1,01,818 | 1,43,550 |
| 2001-02 | 40,927 | 1,01,818 | 1,42,745 |
| 2002-03 | 55,438 | 61,818 | 1,17,256 |
| 2003-04 | 77,397 | 0 | 77,397 |
| 2004-05 | 80,770 | 0 | 80,770 |

**स्रोत :** भारतीय रिज़र्व बैंक वार्षिक रिपोर्ट 2004-05

कार्यदल (अध्यक्षा : उषा थोरात) ने सन् 1997 के अनुबंध की समीक्षा करने का प्रस्ताव दिया ताकि रिज़र्व बैंक में सरकार के खाते में अधिशेष का स्वचालित निवेश न किया जाए तथा वह ब्याज रहित जमाराशि के रूप में रिज़र्व बैंक के पास रहे ताकि और अवशोषण के लिए रिज़र्व बैंक के पास प्रतिभूतियां उपलब्ध रहें (भा.रि.बैंक 2003ग)। तदनुसार 8 अप्रैल 2004 से केंद्र सरकार के अधिशेष का स्वतः निवेश अस्थायी तौर पर बंद कर दिया गया। तत्पश्चात् बाज़ार स्थिरीकरण योजना की शुरुआत से केंद्र के अतिरिक्त नकदी शेष का उसकी अपनी प्रतिभूतियों में निवेश की रीति जून 2004 में 10,000 करोड़ रुपए की सीमा में आंशिक रूप से पुनः शुरू की गई (यह सीमा अक्तूबर 2004 में बढ़ाकर 20,000 कर दी गई)।

*बाज़ार स्थिरीकरण योजना*

7.126 स्थिरीकरण के उपकरण संबंधी कार्यदल की सिफारिशों के अनुसरण में केंद्रीय सरकार एवं रिज़र्व बैंक द्वारा हस्ताक्षरित ज्ञापन के अधीन 1 अप्रैल 2004 को बाज़ार स्थिरीकरण योजना की शुरुआत की गई। इस योजना के अंतर्गत रिज़र्व बैंक की निवल विदेशी आस्तियों में वृद्धि से उत्पन्न चलनिधि का अवशोषण बाज़ार स्थिरीकरण योजना के अधीन केंद्रीय सरकार के खज़ाना बिलों एवं दिनांकित प्रतिभूतियों के

**चार्ट VII.2 : एलएएफ बनाम एसएसएस परिचालन**

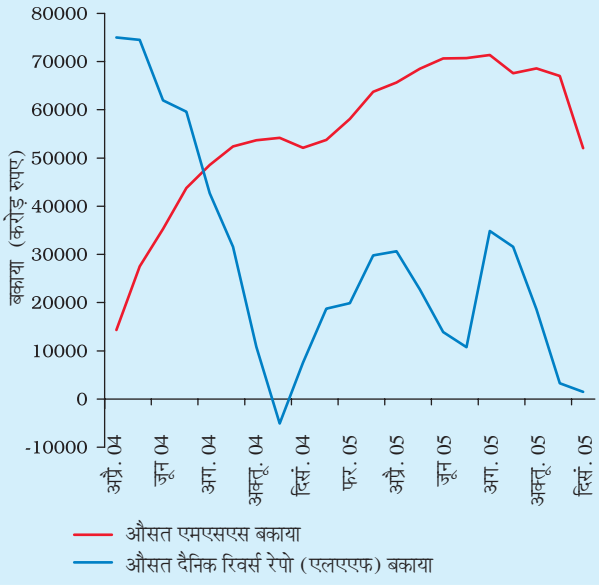


निर्गम द्वारा किया जाता है। बाज़ार स्थिरीकरण योजना के अंतर्गत प्राप्त धनराशि को केंद्र सरकार के एक अलग नकदी खाते में रखा जाता है जिस धन का प्रयोग बाज़ार स्थिरीकरण योजना के अधीन निर्गमित प्रतिभूतियों के भुगतान के लिए किया जाता है। रिज़र्व बैंक द्वारा रखे जाने वाला एवं परिचालित इस प्रकार रिज़र्व बैंक की निवल विदेशी आस्तियों के वृद्धि के बराबर बाज़ार स्थिरीकरण योजना के अधीन सरकारी शेष में वृद्धि हो जाती थी जिससे रिज़र्व बैंक के सरकार को निवल ऋण में कमी होती थी तथा रिज़र्व बैंक की निवल विदेशी आस्तियों में वृद्धि के मौद्रिक प्रभाव का निराकरण हो जाता था। बाज़ार स्थिरीकरण योजना का परिचालन चलनिधि अवशोषण का महत्वपूर्ण उपकरण बना तथा इससे चलनिधि समायोजन सुविधा योजना के भार में प्रभाव की कमी आई (चार्ट VII.2)।

## न्यून मौद्रीकरण के समय सार्वजनिक ऋण का प्रबंध

7.127 राजकोषीय अनुशासन, भारी पूंजी प्रवाह, सुखदायी चलनिधि स्थिति एवं स्थिर मुद्रास्फीति संभावना के युग से रिज़र्व बैंक के सार्वजनिक ऋण प्रबंध से सुविधा हुई। सन् 2003-04 एवं 2004-05 में केंद्र सरकार की कम बाज़ार उधारी से केंद्र सरकार के ऋण प्रबंध में विशेष मज़बूती आई। इन दो वर्षों में राष्ट्रीय लघु बचत निधि (एनएसएसएफ) द्वारा ऋणान्तरण योजना[25] की राशि के निवेश से केंद्र सरकार के राजकोषीय

[25] डीएसएस के अंतर्गत, जो 2002-03 से 2004-05 तक लागू था, राज्य सरकारों ने केंद्र सरकार को ऋण की ऊंची लागत की अदायगी की है, परिणामस्वरूप, उसने ऐसे आगमों का उपयोग एनएसएसएफ को जारी प्रतिभूतियों के मोचन में कर लिया। एनएसएसएफ ने उसी को और कम ब्याज दर पर केंद्र सरकार की विशेष प्रतिभूतियों में पुनः निवेश कर दिया।

घाटे के वित्तपोषण के कारण बाज़ार उधार पर दबाव घटा। इसके अतिरिक्त केंद्र के पास नकदी की अधिकता से 2004-05 में बाज़ार ऋण कार्यक्रम पर दबाव भी कम हुआ। एक उल्लेखनीय बात यह थी कि केंद्र के अच्छे नकदी शेष के कारण अर्थोपाय अग्रिम ऋण सुविधा का प्रयोग लगभग बंद कर दिया गया। सहायक आर्थिक परिस्थितियों में बेहतर राजकोषीय अनुशासन से रिज़र्व के समय के साथ ऋण की लागत कम करने तथा ऋण की परिपक्वता अवधि बढ़ाने के लक्ष्य युगल की प्राप्ति में बहुत मदद मिली। सन् 2003-04 तक केंद्र एवं राज्यों के बाज़ार ऋण की भारित औसत लागत में लगातार कमी आई तथा भारित औसत परिपक्वता अवधि में वृद्धि हुई। 2004-05 में अंतरराष्ट्रीय तेल कीमतों में भारी वृद्धि, अंतरराष्ट्रीय ब्याज चक्र में उच्चावर्तन एवं घरेलू ब्याज दर में वृद्धि से ब्याज दरों में उछाल के बावजूद भारित औसत लागत में मामूली वृद्धि एवं भारित औसत परिपक्वतावधि में मामूली कमी से सरकारी ऋण का सफल प्रबंध किया गया। सन् 1990 के दशक अंत से सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास के लिए गए उपायों एवं सुधारों से बैंकों, वित्तीय संस्थाओं एवं बीमा कंपनियों के सरकारी प्रतिभूतियों में वर्धमान निवेश में सहायक परिस्थितियां बनी रही।

## सार्वजनिक ऋण की पुनर्रचना

7.128 सार्वजनिक ऋण के प्रबंध में उसका आकार एवं ब्याज भुगतान दबाव सबसे बड़े जोखिम हैं। अपनुरक्षणीय ऋण-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात एवं वर्धमान ब्याज भुगतान भार से कमी लाना ही सार्वजनिक ऋण की पुनर्रचना द्वारा राजकोषीय समायोजन के लक्ष्य हैं। सरकारी ऋण के भुगतान क्षमता से बड़ा होने की स्थिति के निवारण के लिए ऋण के आकार में प्रत्यक्ष कमी लाना आवश्यक है। ऋण की पुनर्रचना प्राय ऋणान्तरण, ऋण खरीद, पुन: अनुसूचित क्रिया, ऋण राहत एवं रियायती पुनर्वित्त के द्वारा किया जाता है। सन् 1990 के दशक के मध्य से भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक ऋण में भारी वृद्धि से ब्याज भुगतान का भार बहुत बढ़ गया। इस भार को कम करने के लिए सरकारी प्रतिभूतियों के बाज़ार संमत प्राथमिक निर्गम, भिन्न लिखतों की शरुआत, नए ऋणों की परिपक्वता अवधि को वर्तमान ऋणों के शोधन-विन्यास के अनुकूल बनाने सहित अनेक उपाय पिछले वर्षों में किए गए। सन् 2003-04 के संघ बजट में की गई परिकल्पना के अनुसार राजकोषीय स्थिति में सुधार लाने हेतु सार्वजनिक की पुनर्रचना के लिए सक्रिय प्रयास किए गए। तदनुसार केंद्र सरकार ने 2002-03 एवं 2003-04 में विश्व बैंक एवं एशियाई विकास बैंक की अधिक लागत वाले विदेशी ऋणों का समयपूर्व भुगतान किया। रिज़र्व बैंक ने भी परस्पर स्वैच्छिक वार्तालाप के बाद 19 उच्च ब्याज दर पर सापेक्षतया कुद्रव प्रतिभूतियों की नीलामी द्वारा पुनर्खरीद की तथा वर्तमान चार द्रव प्रतिभूतियों को सममूल्य पर पुनर्निगम किया। इसके अतिरिक्त, डीएसएस के माध्यम से राज्यों के ऋण की पुनर्रचना एवं एकीकरण की नई योजना शुरू की गई जिसके अंतर्गत राज्यों ने 2004-05 तक तीन वर्षों में तत्कालीन ब्याज दर पर ताजा ब्याज ऋण उगाही एवं लघु बचत राशि से अपने उच्च ब्याज दर वाले ऋणों का केंद्र को समय पूर्व भुगतान किया।

## राज्यों के ऋण प्रबंधक के रूप में रिज़र्व बैंक द्वारा हाल ही में किए गए उपाय

7.129 हाल ही के वर्षों में एक उललेखनीय बात यह रही कि राज्यों ने अर्थोपाय ऋण एवं ओवरड्राफ़्ट सुविधा का कम लाभ उठाया जिसके लिए, अन्य के अलावा, सन 1990 के दशक के अंत से उच्चतर राजस्व संग्रहण एवं लघु बचत के रूप में संसाधनों का सतत प्रवाह सहित राजकोषीय सुधारों की शृंखला ज़िम्मेदार है। विशिष्ट अनुरोध पर नीलामी विधि द्वारा आधे बाज़ार ऋण उठाव की अनुमति देकर रिज़र्व बैंक ने राज्यों को अधिक नम्यता उपलब्ध कराई।

7.130 रिज़र्व बैंक सन् 1997 से औपचारिक तौर पर राज्यों के वित्त सचिवों का संमेलन आयोजित करता रहा है जिसमें राज्यों के वित्तीय मामलों पर रिज़र्व बैंक, केंद्र सरकार एवं राज्यों की आय सहमति से दृष्टिकोण बनाया जाता है। इस संदर्भ में रिज़र्व बैंक राज्यों को उनके द्वारा राज्यस्तरीय संस्थाओं के लिए दी गई गारंटियों के भारी परिमाण के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयास करता रहा है क्यों इन गारंटियों के न्यागमन से उनके ऋण का भार बहुत बढ़ेगा तथा उनकी समग्र वित्तीय स्थिरता पर बुरा असर पड़ेगा राज्य सरकार की प्रतिभूतियों पर तकनीकी दल की रिपोर्ट की सिफारिशों के अनुसार अब तक नौ राज्यों ने अपने गारंटी निर्गम पर सांविधिक / प्रशासनिक सीमा निश्चित की है (भा.रि.बैंक 1999 एवं 2005डी)। निवेशकों की ओर से आवधिक अंतराल पर राज्य सरकार द्वारा प्रत्याभूत ऋणों एवं बांडों की सूचना एकत्र करने के लिए रिज़र्व बैंक ने सन् 2004 में राज्य सरकारों द्वारा प्रत्याभूत ऋण एवं बांडों की सूचना के बारे में स्थायी समिति का गठन किया। रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकारों की पेंशन देयताओं के अध्ययन के लिए एक अध्ययन दल भी बनाया (अध्यक्ष : बी.के.भट्टाचार्य), जिसने अपनी रिपोर्ट में राज्यों की पेंशन समस्या के

समाधान के लिए वैकल्पिक दीर्घावधि संरचनात्मक दल सुझाए (भा.रि.बैंक 2003ए)। राज्यों की विभिन्न प्रकार की ऋण देयताओं के आंकड़े संकलित करने का तरीका सुझाने के लिए रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकारों की देयताओं के आंकड़ों के संकलन की विधि पर कार्यदल भी स्थापित किया।

7.131 सारांश में, 2003-04 में सरकार ने 1990 के दशक के अंत में आए राजकोषीय गिरावट के संदर्भ में नए निश्चय का परिचय दिया। रिज़र्व बैंक ने राजकोषीय प्रधानता के दुष्प्रभावों के प्रति सरकार को संवेदनशील बनाया तथा ऋण की सांविधिक सीमा निश्चित करने की आवश्यकता पर बल दिया। अतः सरकार ने नियमाधारित राजकोषीय सुधार प्रक्रिया अपनाने का निश्चय किया तथा अच्छी आर्थिक स्थिति से इसमें सहायता मिली। इस काल में सरकार ने बेहतर नकदी प्रबंध किया तथा रिज़र्व बैंक से अर्थोपाय अग्रिम सुविधा का कम उपयोग किया। इन कारकों ने ऋण एवं मौद्रिक प्रबंध ने मदद की तथा इससे अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल मूल्यों में वृद्धि के बावजूद ब्याज दरों को स्थिर रखने में मदद मिली। राज्य सरकारों के साथ संबधों में रिज़र्व बैंक ने वित्तीय क्षेत्र सुधारों की पृष्ठभूमि में विचार विमर्श द्वारा वित्तीय स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। इस संदर्भ में रिज़र्व बैंक द्वारा आयोजित राज्य वित्त सचिव संमेलन से राज्य सरकार प्रतिभूति सीमा, समेकित डूब खाता योजना एवं बाज़ार उधार दृष्टिकोण सहित सभी महत्वपूर्ण मामलों पर रिज़र्व बैंक, केंद्र सरकार एवं राज्यों के बीच विचारों के आदान प्रदान का पंच उपलब्ध हुआ है।

## VI. राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम (2005-09) एवं मुद्रा-राजकोष समन्वय

7.132 राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम 2003 के प्रावधानों के अनुसार सन् 2005-06 से लागू सहकारी राजकोषीय संघ व्यवस्था तथा 2006-07 से रिज़र्व बैंक द्वारा प्राथमिक सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में सहभागिता की समाप्ति के परिदृश्य में मुद्रा-राजकोष समन्वय तथा ऋण प्रबंध का नया युग शुरू हुआ है। राज्य स्तर पर भी बारहवें वित्त आयोग (अध्यक्ष : सी. रंगराजन, 2005) द्वारा दी गई ऋण राहत से आंशिक प्रेरणा लेकर 16 राज्यों ने भी राजकोषी उत्तरदायित्व कानून पारित किए है। इन उपायों का उद्देश्य सन् 2008-09 तक राज्यों के बजट घाटे को खत्म करना तथा राजकोषीय घाटे को कम करके राज्यों के ऋण में कमी लाना है। बारहवें वित्त आयोग (टीएफसी) की सिफारिशों को अमल में लाकर केंद्र सरकार ने राज्यों की योजना के लिए केंद्रीय सहायता अंश ही आबंटित करता है तथा करता रहेगा तथा सन 2005-06 से राज्यों को ऋण उठाव के लिए भी सीधे बाज़ार में जाने की अनुमति देगा। वित्तीय रूप से कमजोर राज्यों के अलावा केंद्र द्वारा राज्यों के ऋण उठाव में उत्तरोत्तर घटती मध्यस्थता से बाज़ार ऋण उठाव में रिज़र्व बैंक को ज़्यादा ज़िम्मेदारी उठानी पडेंगी। रिज़र्व बैंक केंद्र एवं राज्य सरकारों से सलाह मशविरा करके सुचारु संक्रमण में मदद करेगा।

7.133 अप्रैल 2006 से प्राथमिक बाज़ार से निष्कासन के कारण रिज़र्व बैंक सरकारी ऋणों के अंतिम हामीदार की भूमिका नहीं निभा सकेगा तथा न ही आवश्यकतानुसार सरकार को वित्त उपलब्ध करवा सकेगा [26]। इससे ऋण प्रबंध लक्ष्यों की प्राप्ति एवं सब स्थितियों से सरकार बाज़ार को अस्थिर किए बगैर ऋण लेने से सक्ष्यम बनी रहे यह सुनिश्चित करने के लिए एक वैकल्पिक संस्थागत प्रणाली की स्थापना की आवश्यकता पड़ेगी। चूंकि रिज़र्व बैंक द्वितीयक बाज़ार में हस्तक्षेप करता रहेगा अतः मुक्त बाज़ार परिचालन मुद्रा एवं ऋण प्रबंध का एक महत्वपूर्ण उपकरण बनेगा जिससे बाज़ार में आए परिवर्तनों के अनुरुप प्रक्रियाओं एवं तकनीकी आधारभूत ढांचे को पुनःअभिमुख करने की आवश्यकता पड़ेगी।

### नई व्यवस्था में ऋण प्रबंध रणनीति

7.134 अप्रैल 1, 2006 से सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक बाज़ार से रिज़र्व बैंक के हटाव का चरण प्रभावी बनेगा। सुधारों की शुरुआत के समय से ही रिज़र्व बैंक इसके लिए तैयारी कर रहा है। ऐसी स्थिति पैदा करना कि जहां अनाबद्ध निवेशक द्वितीयक बाज़ार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएट यह सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास के लिए रिज़र्व बैंक की रणनीति का अनिवार्य हिस्सा रहा जिससे प्राथमिक व्यापारी सभी नीलामी निर्गमों के हामीदार बन सकें तथा अंतिम निवेशक को ये प्रतिभूतियां उपलब्ध करवा सकें। एक सुविकसित सरकारी प्रतिभूति बाज़ार रिज़र्व बैंक को प्राथमिक निर्गम में निवेश करने से बचने में सहायक होगा तथा वह मुक्त बाज़ार

[26] 1990 के दशक के प्रारंभ में यह पाया गया था कि धीरे-धीरे एक ऐसी प्रणाली का विकास होगा जिसमें प्राथमिक व्यपारियों की सभागिता बढ़ेगी और अंततः एक ऐसी स्थिति पैदा होगी कि प्राथमिक व्यापारियों को संपूर्ण निर्गम लेना पड़ेगा (भारिबैं, 1993)

परिचालन द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद फ़रोख्त करके चलनिधि प्रबंध कर सकेगा। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध व्यवस्था के अधीन अप्रैल 2006 से ऋण प्रबंध प्रणाली में अपेक्षित परिवर्तनों को पहचानते हुए रिज़र्व बैंक के केंद्रीय प्रतिभूतियों पर आंतरिक तकनीकी दल ने इस बाज़ार के विकास की समीक्षा की तथा मौद्रिक नीति, सार्वजनिक ऋण प्रबंध एवं सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के पर्यवेक्षी नियमन के परिचालन ढांचे के सुदृढ़ीकरण एवं पुनर्भिमुखीकरण, विशेषकर उभरती हुई आवश्यकताओं की पूति एवं रिज़र्व बैंक तथा बाज़ार सहभागियों को सुसज्जित करने की दृष्टि से मुक्त बाज़ार परिचालन ढांचे को मज़बूत करने, के लिए सुझाव दिए। चूंकि सिफारिशों के अनुसार ऋण निर्गम प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन करना आवश्यक है अतः इन सिफारिशों की जांच की जा रही है तथा रिज़र्व बैंक सरकार के साथ विचार विमर्श करके एवं बाज़ार मत लेकर ही अंतिम निर्णय लेगा।

7.135 प्रगति की जांच करके उक्त तकनीकी दल ने यह उल्लेख किया है कि यद्यपि मुक्त बाज़ार परिचालन एवं सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में संतोषजनक विकास हुआ है तथापि तीन कारणों से मुक्त बाज़ार परिचालन का पुनः अभिमुखीकरण आवश्यक है। प्रथम, भारत के वित्तीय बाज़ार की समेकन प्रक्रिया अभी भी पूरी नहीं हुई है क्योंकि वह अब भी परिपक्वतावधि, चलनिधि एवं जोखिम संबंधी विखंडन, विषम, समेकन एवं गहनता की कमी आदि समस्याओं वर्तमान से ग्रस्त है। सरकारी प्रतिभूतियों की परिपक्वतावधि में भी समेकन अपूर्ण पाया गया जिसका उदाहरण अधिशेष नकदी स्थितियों में भी आय वक्र की विकृति या उलटपने में देखा जा सकता है। दूसरे, यद्यपि ऋण प्रबंध लगातार परिपक्वतावधि को दीर्घ करता रहा है परंतु कुछ चलनिधि कुछ परिपक्तावधियों तक ही सीमित रही। तृतीय, बैंकिंग विनियमन अधिनियम में प्रस्तावित संशोधन, जिससे रिज़र्व बैंक को निम्न सांविधि चलनिधि अनुपात नियत करने की क्षमता मिल जाएगी, से उच्च ब्याज दर काल में खरीददारी से बचने की बैंकों की प्रवृति और गंभीर हो जाएगी। अतः दल ने यह सुझाव दिया कि यद्यपि मुक्त बाज़ार परिचालन का प्रयोग मुखतः सरकारी उधार एवं पूंजी प्रवाह से उत्पन्न है, तथापि इसका प्रयोग अप्रत्याशित स्वतंत्र नकदी घटबढ़ के लिए किया जाता रहेगा तथापि रिज़र्व बैंक स्थिति के अनुसार अत्यधिक अस्थिरता से निपटने, व्यवस्थित बाज़ार स्थितियों को प्रोत्साहित करने एवं सरकारी प्रतिभूतियों की चलनिधि में सुधार लाने के लिए द्वितीयक बाज़ार में सहभागिता का विकल्प अपने पास सुरक्षित रख सकता है।

7.136 उक्त दल ने सिफारिश की कि प्राथमिक बाज़ार से रिज़र्व बैंक के हटने से उत्पन्न स्थिति में न्यूनतम वचनबद्धता एवं नीलामी पर आधारित अतिरिक्त वचनबद्धता द्वारा शत प्रतिशत हामीदारी सुनिश्चित कर प्राथमिक व्यापारियों द्वारा ज़्यादा सक्रिय एवं गत्यात्मक भागीदारी के उपाय किए जाएं। इसके बदले में नीलामी उपरांत उत्पन्न किसी अस्थायी नकदी समस्या के समाधान के लिए रेपो के माध्यम से नीलामी में खरीदी प्रतिभूतियों को रिज़र्व बैंक में जमानत के रूप में रखकर अग्रिम देने की सुविधा की संभावना पर विचार किया जाना चाहिए। उक्त दल ने इस बात की सिफारिश की, कि प्राथमिक व्यापारियों द्वारा फ्रन्ट रनिंग के जोखिमों एवं निवेशकों द्वारा प्रतिभूतियों की खरीद की लागत में वृद्धि की आशंकाओं को दरकिनार करते हुए चयनित आधारपर प्राथमिक व्यापारियों को प्राथमिक नीलामी में भाग लेने का अनन्य अधिकार देने की ''नपी तुली नीति'' अपनाई जाए। उक्त दल ने उल्लेख किया कि प्राथमिक व्यापारियों को बाज़ार निर्माण के लिए प्रोत्साहित करने के साथ साथ, बदलते परिदृश्य में रिज़र्व बैंक नए लिखतों की शरुआत, प्रतिभूतियों के पंजीकृत ब्याज एवं मूलधन की अलग-अलग खरीद बिक्री (STRIPS), अनेक छोटे - छोटे आकार की अंतरल प्रतिभूतियों के बदले कुछ तरल प्रतिभूतियों के विनिमय द्वारा सरकारी ऋण का समेकन, नीलामी प्रक्रिया की पारदर्शिता एवं नम्यता में सुधार, समुचित सुरक्षात्मक उपायों सहित मंदड़िया बिक्री की चरणबद्ध शुरुआत तथा बढ़ती ब्याज दर स्थिति में बाज़ार लेनदेन का परिमाण दुष्प्रभावित न हो इसलिए ''व्हेन इश्युड'' बिक्री का आरंभ, उपायों द्वारा बाज़ार का विकास करता रहे।

## लोक ऋण एवं मौद्रिक प्रबंध को अलग-अलग करना : मुद्दे एवं विकल्प

7.137 लोक ऋण प्रबंध लागत एवं परिपक्वतावधि को अभीष्टतम करने, सरकार के लिए आवश्यक धन की उपलब्धता सुनिश्चित करने, तथा सरकारी प्रतिभूति के लिए दक्ष बाज़ार का विकास द्वारा सरकार के ऋण का प्रबंध करने के लिए एक रणनीति का निर्माण एवं कार्यान्वयन की प्रक्रिया है। दूसरी ओर मौद्रिक नीति मूल्य स्थिरीकरण के स्थूल लक्ष्य के अधीन मुद्रापूर्ति एवं ब्याज दरों के विनियमन द्वारा ऋण की लागत एवं उपलब्धता को नियंत्रित करने का माध्यम है। अतः जब मुद्रा प्राधिकारी एक ही समय सरकारी ऋण में कमी लाने तथा मूल्य स्थिरता निश्चित करने का प्रयास करती है तो ऋण प्रबंध एवं मुद्रा प्रबंध कार्यों में टकराव पैदा होता है। प्रायः मुद्रास्फीति दबावों के

उत्पन्न होने पर ब्याज दरों में वृद्धि द्वारा मौद्रिक नीति को कठोर बनाना पड़ता है जिससे लोक ऋण की लागत बढ़ती है। अतः यह माना जाता है कि वित्तीय सुप्रबंध के लिए इन दोनों कार्यों को अलग-अलग करना आवश्यक है (सुंदरराजन एवं अन्य, 1997)। इस अलगाव की पूर्वशर्त यह है कि सरकार केंद्रीय बैंक के निभाव के बिना बाज़ार संमत ब्याज दरों पर लोक ऋण द्वारा अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करे। तब मौद्रिक नीति मुद्रास्फीति नियंत्रण के अपने प्राथमिक उत्तरदायित्व पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकेगी।

*अलगाव के पक्ष में तर्क*

7.138 विकसित अर्थव्यवस्थाओं में, जहां वित्तीय एवं सरकारी प्रतिभूति बाज़ार सुविकसित हैं, ऋण प्रबंध सरकार के राजकोषीय परिचालनों पर निर्भर करता है तथा मौद्रिक नीति का परिचालन स्वतंत्र रूप से किया जाता है। इससे यह सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है कि ऋण प्रबंध एवं ब्याज संबंधी निर्णय स्वतंत्र रूप से लिए जा सके तथा बाज़ार परिचालन में हितों का टकराव टाला जाए। इन देशों में, नीति लक्ष्यों की प्राप्ति बाज़ार शक्तियों की क्रिया से की जाती है तथा वित्तीय बाज़ार दरों का प्रयोग नीति निर्माण में किया जाता है। इसके अलावा मौद्रिक राजकोषीय एवं ऋण प्रबंध नीतियों के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अलग-अलग संस्थागत आधार है; जो क्रमशः केंद्रीय बैंक, राजकोषीय एवं ऋण प्रबंध प्राधिकारियों के लक्ष्यों एवं उपकरणों में अलगाव रखते हैं। आस्ट्रेलिया, ऐरे एवं यू.के. में ऐसा अलगाव पहले ही व्यवहार में है।

7.139 एक अलग ऋण कार्यालय की स्थापना से स्वतंत्र ऋण प्रबंध नीति का अस्तित्व सुनिश्चित नही होता। ऋण प्रबंध के लिए ठोस एवं संतुलित दृष्टिकोण विकसित करने के लिए ऋण कार्यालय के लिए स्पष्ट लक्ष्यों एवं संगठनात्मक भूमिकाओं का निर्धारण आवश्यक है जबकि मौद्रिक नीति एवं ऋण प्रबंध के अलगाव के लिए वित्तीय बाज़ारों की मुक्ति एवं विकास पूर्वशर्त है। परिणामस्वरूप ऋण प्रबंध संबंधित सभी निर्णय ऋण कार्यालय को सौंप दिए जाते हैं तथा नीतिगत लक्ष्यों में साम्यता के लिए समन्वय की औपचारिक व्यवस्था की जाती है।

*अलगाव के विरुद्ध तर्क*

7.140 उदीयमान बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में अविकसित वित्तीय बाजारों के कारण मुद्रा एवं ऋण प्रबंध कार्यों को पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि ऋण परिचालन के लिए केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ सकती है तथा उनसे ब्याज दरों एवं घरेलू वित्त बाज़ारों पर असर पड़ता है। अतः अलगाव के लिए वित्तीय बाज़ार सुधारों को सही प्रकार से क्रमबद्ध करना आवश्यक है। अनेक उदीयमान बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में केंद्रीय बैंक ऋण प्रबंध का कार्य प्रमुखतः इसलिए करता है क्योंकि उसके पास प्रासंगिक सूचना की निगरानी के लिए आवश्यक विशेषज्ञता होती है तथा वह मौद्रिक नीति के परिचालन के भाग के रूप में बाज़ार चलनिधि का विनियमन कर सकता है।

7.141 वित्त बाज़ार सुधारों की प्रारंभिक अवस्था में ऋण लिखतों एवं प्राथमिक निर्गमों का प्रयोग प्रायः मौद्रिक नीति लक्ष्यों के लिए किया जाता है जिससे मुद्रा एवं राजकोष प्राधिकारियों के मध्य घनिष्ठतर दैनंदिन समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। इस संदर्भ में वित्त बाज़ार विकास एवं सुसमन्वित मुद्रा एवं ऋण प्रबंध प्रक्रियाएं एक दूसरे की सबल बनाती हैं। बाज़ार आधारित लिखतों के पचलन से, जिसके लिए शुरू में केंद्रीय बैंक द्वारा लक्ष्यों एवं लिखतों में समन्वय की आवश्यकता पड़ती है - केंद्रीय बैंक को सक्रिय चलनिधि प्रबंध के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं तथा संस्था विकास की उत्प्रेरणा मिलती है। जिससे बदले में मुद्रा एवं सरकारी प्रतिभूति बाज़ार की गहनता एवं दक्षता में वृद्धि से मुद्रा एवं लोक ऋण नीति के उपकरणों एवं समन्वय प्रक्रियाओं को मज़बूत बनाने के अवसर पैदा होते हैं। इस संदर्भ में 'आबद्ध स्रोत' (सांविधिक चलनिधि की आवश्यकता द्वारा) से 'स्वैच्छिक स्रोत' (बाज़ार आधारित व्यवहार के प्रयोग से) को संक्रमणशील देशों में सहायक ऋण प्रबंध संस्थाओं के विकास की आवश्यकता है। ऋण एवं मुद्रा प्रबंध लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन भूमिकाओं को लोक ऋण प्रबंध की व्यापक संरचना का भाग बनाना महत्वपूर्ण है।

7.142 यद्यपि पिछले दो दशकों में मुद्रा एवं ऋण प्रबंध संस्थाओं के अलगाव पर सर्वसंमति बनती दिखाई दे रही है, परंतु उदीयमान बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में यह सदा व्यवहार्य नहीं होता। इन अर्थव्यवस्थाओं में, जहां ऋण प्रबंध में केंद्रीय बैंक की सक्रिय भूमिका है, वहीं लोक ऋण एवं मुद्रा प्रबंध भूमिकाओं के अलगाव के लिए उस भूमिका की प्रकृति, सामयिकता, एवं परिचालन की प्रकृति की स्पष्ट परिभाषा करना जरूरी है।

*भारतीय मामला*

7.143 भारत में, जहां लोकऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति के कार्य रिज़र्व बैंक को सौंपे गए है, ऋण प्रबंध एवं मुद्रा नीति के अलगाव

की चर्चा इसके लिए आवश्यक तीन शर्तों यथा - वित्त बाज़ारों का विकास, राजकोषीय घाटे में पर्याप्त कमी एवं आवश्यक विधायी परिवर्तनों के प्रति पर्याप्त प्रगति पर निर्भर करती है (भा.रि.बैंक, 2002ए)। भारतीय अर्थव्यवस्था में वित्तीय बाज़ारों, विशेषकर सरकारी प्रतिभूति बाज़ार, में काफी विकास हुआ है। इसके अलावा हाल के वर्षों में मुद्रा नीति में राजकोषीय प्रधानता से उत्पन्न बाध्यता में कमी आई है। नियमबद्ध राजकोष सुधार प्रक्रिया की शुरुआत, सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक बाज़ार से रिज़र्व बैंक का प्रस्तावित हटाव तथा सांविधिक न्यूनतम सांविधिक चलनिधि अनुपात में कमी की अनुमति देने वाले प्रस्तावित विधायी परिवर्तनों के कारण भारत में ऋण प्रबंध एवं मुद्रा नीति के अलगाव के अनुकूल परिस्थितियां पहले कभी नहीं थीं। इस संदर्भ में पूंजी खाता परिवर्तनीयता समिति (अध्यक्ष : एस.एस.तारापोर) ने ऋण प्रबंध एवं मुद्रा नीति के पृथक्करण की सिफारिश की (भा.रि.बैंक 1997बी)। मुद्रा एवं वित्तीय नीतियों में पारदर्शिता विषयक परामर्शदाता दल ने ऋण प्रबंध एवं मुद्रा नीति को आवश्यक शर्त माना परंतु राजकोषीय ज़िम्मेदारी का पर्याप्त अंश उसकी पर्याप्त शर्त मानी गई (भा.रि.बैंक, 2000) ।

7.144 मुद्रा एवं लोक ऋण प्रबंध नीतियों की टकराहट के केंद्र में यह तथ्य विद्यमान है कि सरकारी ऋण पर ब्याज लागत कम करने के लक्ष्य से ब्याज दर को कम करने के लिए दबाव पड़ता है परंतु मुद्रास्फीति में वृद्धि की आशंका से ब्याज दर को बढ़ाकर कठोर मुद्रा नीति अपनाने की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि सुधार पूर्व काल में मौद्रिक नीति निश्चेष्ट रूप से मौद्रीकरण के माध्यम से राजकोषीय नीति का निभाव करती थी परंतु सरकार रिज़र्व बैंक के साथ सक्रिय समन्वय सहित नियंत्रित मूल्यों एवं मौद्रिक प्रभाव के आरक्षित नकदी अनुपात में उत्तरोत्तर वृद्धि द्वारा अवशोषण से मुद्रास्फीति दबाव को नियंत्रण में रखा जाता था। सुधारोत्तर काल में यद्यपि राजकोषीय घाटे के मौद्रीकरण में कमी हुई है तथापि लोक ऋण में बेतहाशा वृद्धि हुई है तो भी रिज़र्व बैंक सक्रियता से लोक ऋण प्रबंध करा सका तथा ब्याज लागत में कमी ला सका क्योंकि सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के पर्याप्त विकास एवं सामान्यतः सुखद चलनिधि परिस्थितियों ने बैंकों को सांविधिक चलनिधि अनुपात के प्रावधान से ज़्यादा सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदने को प्रेरित किया। सन 1990 के दशक के मध्य से मुद्रा स्फीति दबाव में भारी कमी आई अतः रिज़र्व बैंक ने ब्याज दरों को तार्किक स्तर पर रखा जिससे इसके आर्थिक विकास के लक्ष्य के साथ सरकारी ब्याज लागत में कमी करने में सहायता मिली।

7.145 ऋण प्रबंध कार्य को मौद्रिक नीति से पृथक करने के पक्ष में दिया गया तर्क लागत लक्ष्य को मौद्रिक नीति का अनन्य एकल लक्ष्य मानकर बैंक के परिचालन में पारदर्शिता सुनिश्चित कर उसकी विश्वसनीयता बढ़ाने पर आधारित है। यद्यपि सिद्धांततः ऋण को मौद्रिक नीति से पृथक करने से मुद्रा नीति निर्माण की दक्षता बढ़ती है, परंतु इस चर्चा में भारतीय संदर्भ में ऋण-मुद्रा संबंधों के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देना जरूरी है।

7.146 प्रथम भारतीय संदर्भ में सरकार एवं रिज़र्व बैंक के संयुक्त नीति एवं प्रक्रिया संबंधी प्रयासों से लोक ऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति निर्माण में पर्याप्त समन्वय सुनिश्चित किया गया है। जहां एक ओर राजकोषीय अनुशासन, घाटे का कम मौद्रीकरण एवं लोक ऋण प्रबंध के पुनः सक्रिय करण से 1990 केबाद के दशक के मध्य से मौद्रिक नीति परिचालन को पर्याप्त स्वायत्तता दी है वहीं सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के दक्ष परिचालन सहित रिज़र्व बैंक द्वारा सक्रिय ऋण प्रबंध से मौद्रिक नीति के, विशेषकर अप्रत्यक्ष उपकरणों के माध्यम से, परिचालन में सुविधा हुई वास्तव में ऋण प्रबंधक के रूप में रिज़र्व बैंक के पास उपलब्ध सरकारी प्रतिभूतियों की सहायता से रिज़र्व बैंक पूंजी प्रवाह से उत्पन्न चलनिधि प्रभाव का अवशोषण करने में समर्थ हुआ।

7.147 नीति स्तर पर समन्वय के साथ-साथ प्रक्रिया के स्तर पर भी नियमित समन्वय का तंत्र स्थापित किया गया है जिसके माध्यम से रिज़र्व बैंक वार्षिक आधार पर दिसंबर/जनवरी में आगामी वर्ष में मौद्रिक नीति के संभावित मार्ग एवं आर्थिक विकास की वांछित दर तथा मुद्रास्फीति के सहनीय स्तर को ध्यान में रखकर मौद्रिक नीति लक्ष्यों के अनुरूप सरकारी ऋण का व्यवहार्य स्तर का संकेत देता है। बदले में तत्पश्चात बजट में घोषित सरकार का उधार कार्यक्रम रिज़र्व बैंक के वार्षिक नीति वक्तव्य में मौद्रिक नीति के रुझान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है हाल के वर्षों में रिज़र्व बैंक के नीति कार्यों के दैनिक आधार पर मार्गदर्शन के लिए निवल चलनिधि के अनुमान हेतु विकसित 'अल्पावधि चलनिधि पूर्वानुमान प्रतिमान' के माध्यम से दैनंदिन आधार पर अधिक समन्वय की आवश्यकता की पहचान की गई है। सरकार के ऋण प्रबंधक की भूमिका में रिज़र्व बैंक चलनिधि आकलन के प्रतिमान के द्वारा मौद्रिक प्रबंध परिचालन के लिए आवश्यक प्रणालीगत चलनिधि का आकलन करने में भी समर्थ है।

7.148 दूसरे, वर्षों से संचित लोक ऋण प्रबंध अनुभव ने सरकार की आवश्यकताओं एवं बाज़ार परिस्थितियों के अनुरूप निरंतर एवं

समन्वित तरीके से ऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति परिचालन के युगल उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु सुसज्जित किया है। उदाहरण के लिए सरकारी ऋण की लागत कम रखने के उद्देश्य से रिज़र्व बैंक को बाज़ार परिस्थितियों के अनुसार निर्गमों के समय, लिखतों के प्रकार एवं उनके परिपक्वता विन्यास से समायोजन करना पड़ता है। अनुकूल बाज़ार परिस्थितियां न होने पर रिज़र्व बैंक स्वयं सरकारी प्रतिभूतियों को खरीद लेता है तथा अनुकूल परिस्थितियों पैदा होने पर उन्हें बाज़ार में बेच देता है। इसके अलावा हाल के वर्षों में रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक नीति के अल्पावधिक दुष्प्रभावों से ऋणों को बचाने के लिए समुचित उपकरण यथा चलनिधि समायोजन सुविधा का विकास किया जिसके फलस्वरूप मौद्रिक नीति के स्वतंत्र परिचालन में भी सहायता मिली। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारत में अमेरिका में राजकोष एवं फेडरल रिज़र्व बोर्ड के बीच स्थापित समन्वय प्रक्रिया के समान समन्वय प्रक्रिया स्थापित की गई है। उदाहरणार्थ ट्रेजरी फेडरल रिज़र्व बोर्ड परंपरा से ऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति परिचालन के अपने-अपने कार्य क्षेत्रों में स्वायत्तता बनाए हुए है। परंतु फंड एवं ट्रेजरी के बीच समन्वय होता है जहां ट्रेजरी का लक्ष्य वित्तीय बाज़ार में न्यूनतम कठिनाई पैदा करते हुए संघीय ऋण का वित्त पोषण करना है वही फंड ट्रेजरी के एजेंट के रूप में ट्रेजरी की ओर से नीलामी आयोजित करता है, नीलामी से प्राप्त धन एकत्र करता है तथा फेडरल ऋण का लेखा जोखा रखता है (ब्लोमेस्टिन एवं युन्होल्म, 1997)।

7.149 जैसा कि उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है, यद्यपि भारत में मुद्रा एवं ऋण प्रबंध नीतियों के समन्वय में सुधार हुआ है तथापि अनेक चुनौतियां अभी शेष हैं। पहले, सरकार के भारी बाज़ार उधार कार्यक्रम के चलते रिज़र्व बैंक के दक्ष ऋण एवं मुद्रा प्रबंध परिचालन पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है। दूसरे, बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों के लागू होने पर केंद्र राज्य सरकारों के लिए ऋण उगाहने वाले मध्यस्थ का कार्य बंद कर देगा तथा राज्यों को स्वयं बाज़ार से ऋण उगाहना पड़ेगा। तीसरे, जहां एक ओर सरकारी क्षेत्र की बाज़ार ऋण मांग में लगातार वृद्धि होती रहेगी वहीं वर्धमान आर्थिक गतिविधि के कारण बैंक ऋण के लिए वाणिज्यिक क्षेत्र की मांग भी बढ़ेगी तथा वे वित्त क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों के लिए होड़ करेंगे। चौथे, 1 अप्रैल 2006 से प्राथमिक ऋण बाज़ार से रिज़र्व बैंक द्वारा हाथ खींच लेने पर ब्याज दर प्रत्याशा प्रबंध पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। पांचवे, बैंकों की निवल मांग एवं मीयादी देयताओं के 25% से कम सांविधिक चलनिधि अनुपात की छूट देने वाले प्रस्तावित बैंकिंग विनियमन अधिनियम संशोधन से सरकारी प्रतिभूतियों की आबद्ध खरीद कम होगी। इन सब चुनौतियों के मद्देनज़र यह आवश्यक है कि रिज़र्व बैंक ऋण बाज़ार विकास के समग्र ढांचे के अनुरूप निवेशक आधार के विस्तार हेतु प्रयत्न करता रहे।

7.150 लोक ऋण के भारत में मौद्रिक प्रबंध से अलग होने से प्राप्य के पक्ष एवं विपक्ष में दिए गए तर्कों का सही आकलन करके अलगाव के विषय में व्यवहार्य दृष्टिकोण बनाने की ज़रूरत है। विलगाव के विकल्प सीमित हैं, यथा (क) ऋण प्रबंध कार्य का सरकार को अंतरण, (ख) इस उद्देश्य के लिए अलग ऋण कार्यालय की स्थापना, (ग) ऋण कार्य को रिज़र्व बैंक के पास रखते हुए इसे मौद्रिक नीति से कार्यात्मक रुप में अलग रखना। प्रथम विकल्प में कुछ वैधानिक बाधा है क्योंकि विधि अनुसार रिज़र्व बैंक को ऋण प्रबंध के लिए समर्थ बनाया गया है। इसके अलावा एक ही प्राधिकारी राजकोष एवं ऋण प्रबंध का कार्य करेगी तो राजकोषीय सक्रियता से ऋण प्रबंध कार्य की विश्वसनीयता पर असर पड़ेगा। स्वतंत्र ऋण प्रबंध प्राधिकारी की स्थापना के विकल्प का यह लाभ है कि उसके निर्णय पक्षपात रहित होंगे परंतु यह हानि भी है कि वह अपने कार्यों के मौद्रिक प्रभावों की परवाह किए बगैर सरकारी ऋण की लागत में कमी लाने का प्रयास करेगा। इसके अलावा मुद्रा एवं ऋण प्रबंध कार्यों का अलगाव करने वाले विकल्पों का चयन करते समय रिज़र्व बैंक द्वारा सालों से ऋण प्रबंध करके प्राप्त की गई संस्थागत स्मृति एवं तकनीकी दक्षता एवं मुद्रा, राजकोषीय एवं ऋण प्रबंध नीतियों में कार्यात्मक समन्वय से संबंधित कठिनाइयों के निवारण हेतु विकसित औपचारिक संस्था तंत्र के तुलनात्मक लाभों पर भी विचार करना पड़ेगा। अतः ऋण प्रबंध का कार्य रिज़र्व बैंक के पास रखने के तीसरे विकल्प पर विचार करना आवश्यक है। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध चरण के अधीन राजकोषीय सुधार में हुई प्रगति से यह दृष्टिकोण उभर रहा है कि रिज़र्व बैंक को सरकारी ऋण परिचालनों का पुनर्भिमुखकरण करने के साथ-साथ मुद्रा परिचालनों को सशक्त बनाना पड़ेगा। इसके लिए रिज़र्व बैंक के ऋण प्रबंध एवं मुद्रा परिचालनों का कार्यात्मक अलगाव आवश्यक है (भा.रि.बैंक 2005-06) इस संदर्भ में मुद्रा एवं ऋण प्रबंध कार्यों के पृथक्कीकरण के उद्देश्य से रिज़र्व बैंक में सन 2005 में वित्तीय बाज़ार विभाग की स्थापना की गई।

## VII. मौद्रिक एवं राजकोषीय परस्पर संबंध : एक आकलन

### राजकोषीय असंतुलन की प्रवृत्तियां एवं अर्थव्यवस्था पर उसके प्रभाव

7.151 वर्षों से केंद्र सरकार की वित्तीय स्थिति की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि, 1970 के बाद के दशक के मध्य एवं 1990 के बाद

के दशक के प्रारंभ काल को छोड़कर, 'सकल राजकोषीय घाटे' में लगातार वृद्धि होती रही है। सन् 1970 के बाद के दशक के मध्य से राजस्व खाते में घाटे की शुरुआत से सकल राजकोषीय घाटे में भारी वृद्धि हुई जिसका दुष्प्रभाव बाह्य क्षेत्रपर भी पड़ा तथा जिसकी परिणति सन् 1990 के बाद के दशक की शुरुआत में आए आर्थिक संकट में हुई। (चार्ट VII.3)। सुधारोत्तर अनुभव से यह ज्ञान होता है कि भुगतान संतुलन के चालू एवं पूंजी खातों में भारी अंतर्प्रवाह से भारतीय अर्थव्यवस्था में जारी भारी राजकोषीय घाटे के दुष्प्रभावों का निवारण किया परंतु हाल के वर्षों में नियमबद्ध राजस्व वृद्धि एवं खर्चों को युक्ति संगत बनाने से सकल राजकोषीय घाटे में कुछ कमी आई है।

7.152 1980 के बाद के दशक के शुरुआती वर्षों से प्राथमिक तथा ज़्यादा ब्याज भुगतान, अनुदानों, रक्षा खर्च एवं सार्वजनिक उद्यमों में हानि से केंद्र एवं राज्यों की संयुक्त राजकीय वित्तीय स्थिति में कमजोरी आई। 1990 के बाद के दशक के पूर्वार्ध में प्रमुखतया केंद्रीय सरकार के पूंजीगत व्यय में कमी से राजकोषीय स्थिति में सुधार हुआ। 1990 के बाद के दशक के पूर्वाध में पंचम वेतन आयोग का प्रभाव राज्यों के राजस्व घाटे में स्पष्ट झलकता है जिससे अंततः संयुक्त राजस्व एवं पूंजी खाते में घाटे में वृद्धि हुई। हाल ही के राजकोषीय अधिनियम द्वारा राजकोषीय सुधार पर बल देने से राज्य एवं केंद्रीय स्तरों पर राजस्व एवं राजकोषीय घाटों में गिरावट आई (चार्ट VII.4)।

**चार्ट VII.3 : राजकोषीय और बाह्य असंतुलन**

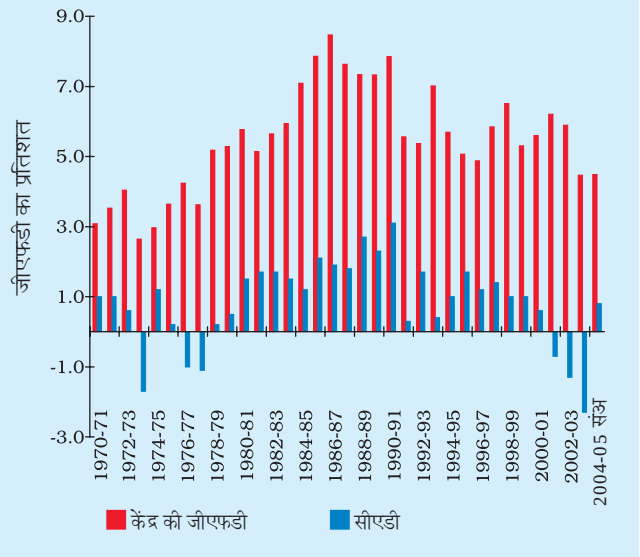


**चार्ट VII.4 : केंद्र और राज्य सरकार के राजस्व एवं राजकोषीय घाटे**

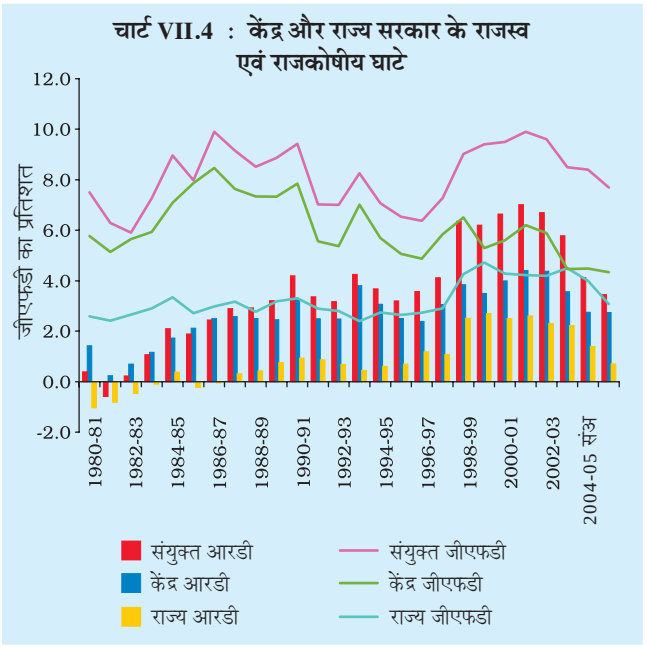


## ऋण स्थिति

*बढ़ते हुए ऋणभार की समस्याएं*

7.153 लोक ऋण की गति, जो 1980 के बाद के दशक में विपरीतगामी हो गई थी, राजकीय राजकोषीय घाटे की भारी दुर्दशा को दर्शाती है। केंद्र सरकार का ऋण/सकल घरेलू उत्पाद अनुपात सन 1980-81 में 41.6% से बढ़कर सन् 1990-91 में 55.3% हो गया। इसके तीन गंभीर दुष्प्रभाव हुए। प्रथम ऋण के साथ ब्याज में हुई वृद्धि से राजस्व प्राप्तियों का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ अंश खपने लगा जिससे राजस्व घाटा बढ़ा। ब्याज भुगतान/ राजस्व प्राप्ति अनुपात, सन् 1980-81 में 21% से बढ़कर 1993-94 में 48.7% हो गया दूसरे, उधार के बढ़ते स्तर से ब्याज दरों में वृद्धि हुई जिसने ब्याज दर संवेदी अल्पावधि निजी क्षेत्र के निवेशकों को बाज़ार से बाहर धकेल दिया जिससे आर्थिक विकास पर बुरा असर पड़ा तीसरे, भारी मात्रा में उधार लेने से भुगतान भार में वृद्धि हुई जिसके परिणाम स्वरूप बार-बार ऋण पुनर्निधारण की समस्या पैदा हुई। सन् 1991 में केंद्र सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए राजकोषीय संकुचन प्रयासों एवं परिणामस्वरूप निवल बाज़ार उधार पर नियंत्रण से ऋण/सघउ अनुपात में सन् 1990-91 में 55.3 प्रतिशत से सन् 1996-97 में 49.4 प्रतिशत रह गया। परंतु सन् 1990 के उत्तरार्ध में राजकोषीय सुधार प्रक्रिया के विपरीतीकरण एवं परिणामस्वरूप केंद्र सरकार के बाज़ार उधार में वृद्धि से ऋण/सघउ अनुपात में वृद्धि हुई। परंतु ब्याज भुगतान/राजस्व प्राप्ति अनुपात में गिरावट जारी रही तथा

चार्ट VII.5: केंद्र तथा राज्य को संयुक्त ऋण

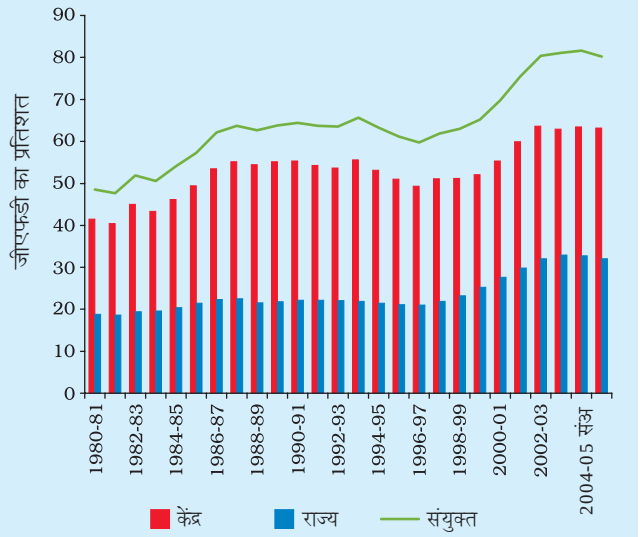


चार्ट VII.6 : केंद्र के जीएफडी को वित्तपोषण

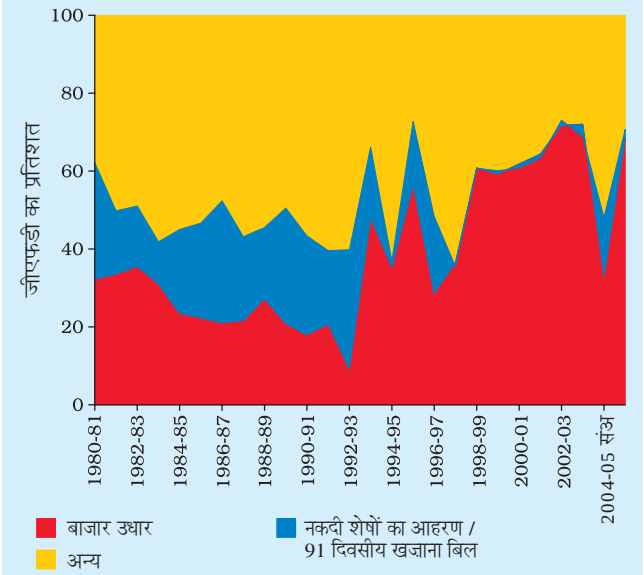


वह 2004-05 में 41.8 प्रतिशत रह गया। राज्य सरकारों का ऋण/सघउ अनुपात सन 1960-81 में 22.5 प्रतिशत से बढ़कर सन् 1990-91 में 22.5 प्रतिशत हो गया तथा सीमित गिरावट के बाद सन 1995-96 में 21.1 प्रतिशत हुआ एवं बाद में पुनः बढ़कर सन 2004-05 में 33.3 प्रतिशत हो गया (चार्ट VII.5)।

## राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण

7.154 मौद्रिक राजकोषीय परस्पर संबंधो पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने की वजह से सरकार के राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण महत्वपूर्ण है। मौद्रिक नीतिगत लक्ष्यों पर कुल वित्तपोषण में बाज़ार उधार का अंश एवं रिज़र्व बैंक से सीधे वित्तपोषण का महत्वपूर्ण असर पड़ता है। केंद्र सरकार के संबंध में अप्रैल 1997 से पहले 91 दिन के तदर्थ खज़ाना बिल द्वारा स्वचालित मौद्रीकरण वित्तपोषण का मुख्य साधन था। तदर्थ खज़ाना बिल के लोपन से केंद्र सरकार के सकल राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण में मौद्रीकरण का अंश घटा है (चार्ट VII.6)।

7.155 सन 1980 से रिज़र्व बैंक एवं शेष बैंकिंग क्षेत्र द्वारा सरकारी क्षेत्र को दिए गए ऋण के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सन् 1980 के दशक के मध्य में कूपन दर एवं सांविधिक चलनिधि अनुपात में वृद्धि के कारण शेष बैंकों के योगदान में वृद्धि हुई। सन् 1990 के दशक के प्रारंभ में नीलामी प्रणाली एवं नए लिखतों के विकास से निष्क्रिय से सक्रिय ऋण नीति का प्रचलन हुआ तथा बैंकों द्वारा सरकारी घाटे के वित्तपोषण में वृद्धि तथा रिज़र्व बैंक के भाग में तदनुसार कमी हुई (बाक्स VII.7)। वास्तव में सन् 1999-2000 से बैंकों का योगदान सांविधिक चलनिधि अनुपात की आवश्यकताओं से अधिक रहा है जिससे यह ज्ञान होता है कि बैंक स्वैच्छिक रूप से भी सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश कर रहे हैं (चार्ट VII.7)।

7.156 सन् 1990 के बाद के दशक की शुरुआत में रिज़र्व बैंक का सरकार को निवल उधार आरक्षित मुद्रा वृद्धि का प्राथमिक उत्प्रेरक था (चार्ट VIII.8)। निवल उधार में भारी वृद्धि से प्रायः हमेशा आरक्षित मुद्रा में समान वृद्धि होती है अतः रिज़र्व बैंक को मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि को नियंत्रित करने हेतु नकदी आरक्षित निधि अनुपात में परिवर्तन करना पड़ता था। नकदी आरक्षित निधि अनुपात, जिसकी परिकल्पना एक विवेकसंमत उपाय के रूप में की गई थी, का उत्तरोत्तर वर्धमान प्रयोग राजकोषीय घाटे से उत्पन्न आरक्षित मुद्रा विस्तार के प्रभाव को निरस्त करने हेतु मौद्रिक नीति के उपकरण के रूप में किया जाने लगा।

7.157 आर्थिक सुधारों के प्रारंभ होने पर सन 1990 के दशक के अधिकांश भाग से केंद्र सरकार के उधार कार्यक्रम से रिज़र्व बैंक के योगदान में कमी आई। परंतु 1990 के बाद के दशक के अंत में केंद्र सरकार की वित्तीय स्थिति में खराबी आने तथा उच्च ब्याज दर स्थितियों में तज्जनित उच्चतर बाज़ार उधार आवश्यकताओं से रिज़र्व

## बॉक्स VII.7
## सकल राजकोषीय घाटा और केंद्रीय बैंक द्वारा सरकार को वित्तपोषण : भारतीय अनुभव

राजकोषीय वर्चस्व का विश्लेषण करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि राजकोषीय घाटे की प्रवृत्ति क्या है और सरकार को केंद्रीय बैंक से कितना ऋण मिल रहा है। यह विश्लेषण, मोटे तौर पर इस बात का संकेत करता है कि मौद्रिक और राजकोषीय नीति के बीच कितना समन्वय है। भारत के संदर्भ में केंद्र सरकार का सकल राजकोषीय घाटा (जीएफडी) सामान्य तौर पर 1971-2005 की अवधि के दौरान बढ़ता रहा है, विशेष रूप से 1980 के दशक के पहले आधे के मध्य से लेकर बढ़ता रहा है। तथापि, केंद्र को रिज़र्व बैंक द्वारा दिए गए निवल ऋण (एनआरबीसी) में उतार-चढ़ाव के विशिष्ट चरण हैं (चार्ट क) । इन दो चरों के बीच के संबंधों में तदनुसार, काफी हद तक संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं।

चार्ट क : केंद्र का राजकोषीय घाटा और भारतीय रिज़र्व बैंक का निवल ऋण

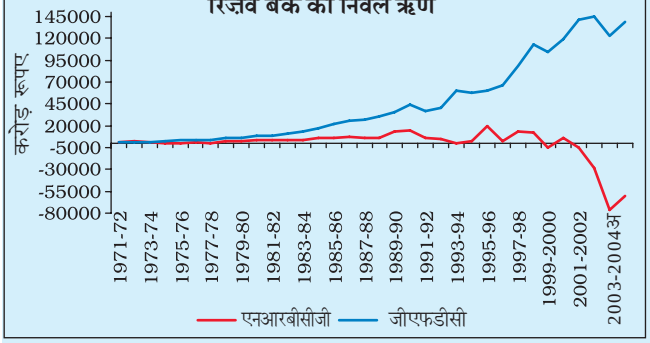


जीएफडीसी और एनआरबीसीजी के बीच सांख्यिकीय संबंध की जांच (1971-2005 के दौरान) के लिए पहले क्रम के ऑटोरिगरेसिव कंपानेंट (एआर 1) के साथ निम्नलिखित रिगरेशन समीकरण का प्राक्कलन किया गया है।

एनआरबीसीजी = 15019.95 + 0.78* जीएफडीसी + [एआर1 =1.11]
(0.54) (0.00) (0.00)

समायोजित आर$^2$ = 0.75. . . . (1)

(पैरंथिसिस में आंकड़े पी मूल्य के हैं)

जीएफडीसी तथा एनआरबीसीजी में उतार-चढ़ाव के बीच संबंध धनात्मक हैं और सांख्यिकी की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। हालांकि, चार्ट क से साबित होता है कि एनआरबीसीजी में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन हुआ है, इसलिए दोनों चरों के बीच के संबंध में समान परिवर्तन हुए हैं। इस शृंखला में संरचनागत परिवर्तन लाने वाले दो प्रमुख कारक हैं :

(i) अप्रैल 1997 से संस्थागत और नीतिगत ढांचे में परिवर्तन हुआ है, जिसमें रिज़र्व बैंक ने 91-दिवसीय तदर्थ खजाना बिलों को जारी करना समाप्त कर दिया और अर्थोपाय अग्रिम प्रणाली प्रारंभ की; और (ii) 2001 से लेकर पूंजी अंतर्वाह में होने वाले घटबढ़ से हुई है। दो चरों के बीच के संबंध में प्रत्याशित परिवर्तन के सांख्यिकीय महत्व को परखने के लिए चाओस (1960) ब्रेकप्वाइंट निम्नलिखित परिणामों सहित की गई है :

**वर्ष 1997-98 के लिए संरचनागत परिवर्तन जांच**

एफ- सांख्यिकी : 6.80; संभाव्यता : 0.00

**वर्ष 2001-02 के लिए संरचनागत परिवर्तन जांच**

एफ- सांख्यिकी : 25.13; संभाव्यता : 0.00

**वर्ष 1997-98 तथा 2001-02 के लिए संरचनागत परिवर्तन जांच**

एफ- सांख्यिकी :14.09; संभाव्यता : 0.00

एफ - सांख्यिकी, जो वर्गफल शेष के सीमित तथा असीमित योग की तुलना पर आधारित है, अत्यधिक एवं सांख्यिकी की दृष्टि से महत्वपूर्ण ह और यह इंगित करती है कि 1997-98 तथा 2001-02 में जीएफडीसी तथा एनआरबीसीजी में घट-बढ़ के बीच के संबंध में संरचनागत परिवर्तन हुए हैं। तीनों - नमूनों में गुणांक के स्थायित्व की और अधिक जांच करने के लिए, केनेडी (2003) का अनुसरण करते हुए, चाओस टेस्ट दोनों अवधि को मिलाकर (1998 और 2001) किया गया जो दोनों चरों के बीच के संबंध में संरचनागत परिवर्तन का होना इंगित करता है। चूंकि समष्टिगत आर्थिक स्थितियों का पूंजी अंतर्वाह पर सीधा प्रभाव पड़ता है, रिगरेशन समीकरण (2) में एनएफएआरबी (रिजर्व बैंक की विदेशी मुद्रा आस्तियों में निवल संचयन (पुनर्मूल्यांक को घटाकर) जो पूंजी अंतर्वाह को इंगित करता है, को शामिल करते हुए (एनआरबीसीजी पर पूंजी अंतर्वाह के प्रभाव की और अधिक जांच की गई। दोनों चरों के गुणांक सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध हुए और उनमें अपेक्षित संकेत भी प्राप्त हुए।

एनआरबीसीजी = 1758.63+0.22*जीएफडीसी 0.75*एनएफएआरबी+ [एआर1=0.31]
(0.17) (0.00) (0.00) (0.11)

समायोजित आर$^2$ = 0.97 . . . . .(2)

(पैरंथिसिस के आंकड़े पी मूल्य में हैं)

उपर्युक्त अभ्यास दर्शाता है कि हाल के वर्षों में सरकारी प्रतिभूति बाज़ार जिस तेजी से उभरा है और पूंजी बाज़ार में जो वृद्धि हुई है, उसने सरकार के घाटे के वित्तपोषण के स्वरूप को बदल कर रख दिया ह। अंतर्वाहों के विनिमय (स्वैप) से उपलब्ध घरेलू मौद्रिक संसाधन के संचय को बैंकों ने सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करके इस्तेमाल किया। चूंकि रिज़र्व बैंक ने विनिमय किए गए अंतर्वाहों के मौद्रिक प्रभाव को समाप्त करने के लिए खुला बाज़ार परिचालन बिकी क माध्यम से अपनी सरकारी प्रतिभूतियों के स्टॉक को लगा दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि रिज़र्व बैंक द्वारा केंद्र सरकार को दिए जाने वाले निवल ऋण में गिरावट हुई है। अतः, केंद्र सरकार के सकल राजकोषीय घाटे का अधिकांश वित्तपोषण बैंकों ने किया है, बजाय रिज़र्व बैंक ऋण के, जिससे घाटे का मौद्रीकरण कम हुआ है।

बैंक को प्राथमिक बाज़ार में ज़्यादा खरीदारी करनी पड़ी (चार्ट VII.9)। अतः भार आगमन एवं निजी खरीदारी द्वारा रिज़र्व बैंक के हस्तक्षेप से सरकार के बाज़ार उधार की लागत कम रखने में मदद मिली।

चार्ट VII.7 : बैंकिंग क्षेत्र द्वारा राजकोषीय घाटे को संयुक्त रूप से वहन करना

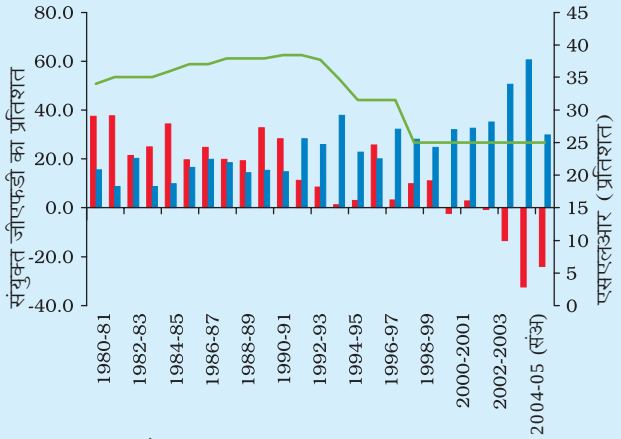


चार्ट VII.9 : केंद्र के सकल बाज़ार उधार में भारिबैंक का प्रारंभिक अभिदान

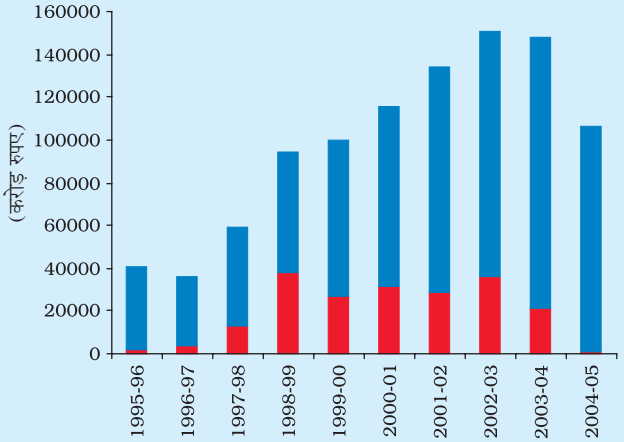


7.158 प्राथमिक बाज़ार में भारी खरीदारी के बावजूद रिज़र्व बैंक द्वारा खुले बाज़ार की बिक्रियों के कारण रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को दिए उधार में सामान्यतः कमी हुई। यह उल्लेखनीय है कि भारी पूंजी अंतर्प्रवाह से उत्पन्न चलनिधि के अवशोषण के लिए खुले बाज़ार की बिक्रियों से सन् 2001-02 से रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को प्रदत्त निवल उधार में कमी आई (चार्ट VII.10)। अतः अर्थव्यवस्था के मुक्त होने से रिज़र्व बैंक की निवल विदेशी आस्तियाँ आरक्षित मुद्रा विस्तार का महत्वपूर्ण स्रोत बन गईं।

7.159 सन 1990 के दशक में रिज़र्व बैंक के ऋण प्रबंध परिचालन का एक महत्वपूर्ण पहलु यह है कि उसने परिपक्वता विन्यास का समुचित समायोजन करके बाज़ार उधार की लागत को न्यूनतम बनाया। इससे ऋण की औसत परिपक्वतावधि में कमी हुई एवं कुल शेष ऋण में दीर्घावधि ऋण का अनुपात मार्च'त 1992 में 75.8 प्रतिशत से घटकर मार्चान्त 1998 में 18.2 प्रतिशत रह गया। कुल ऋण में अल्पावधि ऋण का बड़ा अंश होने से भुगतान के संकेंद्रण एवं बार-बार रोलओवर की समस्या का संज्ञान लेकर रिज़र्व बैंक ने सन 1998-

चार्ट VII.8 : मौद्रीकृत घाटा और मौद्रिक समुच्चय

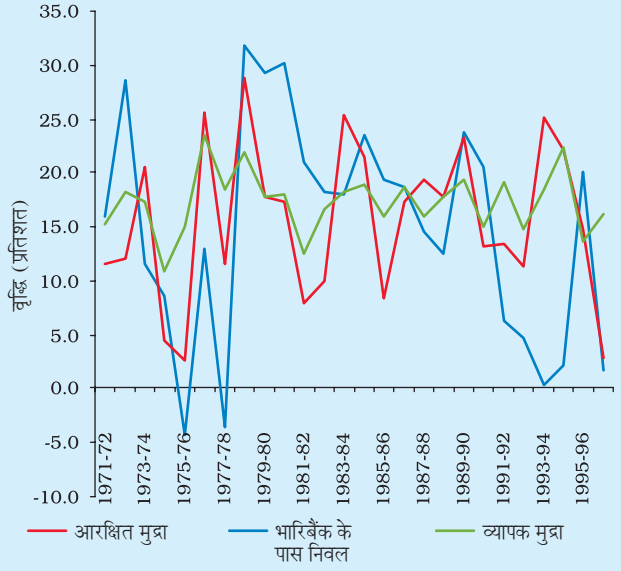


चार्ट VII.10 : रिज़र्व बैंक का खुला बाज़ार परिचालन

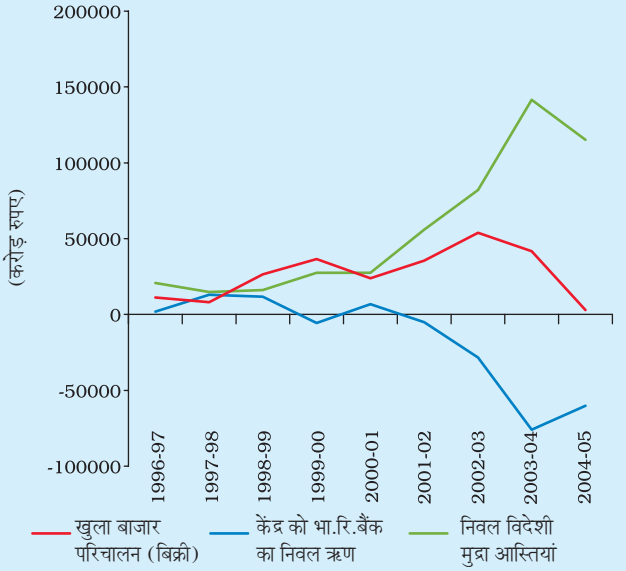

**चार्ट VII.11 : केंद्र के प्राथमिक निर्गमों पर आय तथा परिपक्वता**

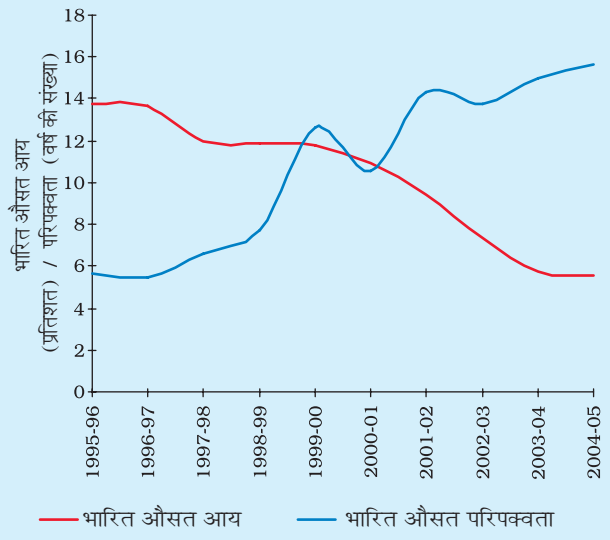


99 में नरम ब्याज दर परिस्थितियों का लाभ लेकर बाज़ार ऋण की परिपक्वतावधि में वृद्धि करने का निर्णय किया ताकि ब्याज लागत एवं रोल ओवर में संतुलन बिठाया जा सके। इस रणनीति से केंद्र सरकार के उधार पर शनै शनैः औसत ब्याज दर में कमी हुई तथा औसत परिपक्वतावधि में बढ़ोतरी हुई।

7.160 मौद्रिक एवं राजकोषीय परस्पर संबंधों के समग्र आकलन से यह ज्ञान होता है कि सन् 1997-98 के पहले रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को उधार के माध्यम से राजकोषीय घाटे के कारण मुद्रा आपूर्ति विस्तार में धनात्मक योगदान रहा। तत्पश्चात, सन 1997 एवं 2001 में राजकोषीय घाटे के स्वतः मौद्रीकरण की समाप्ति तथा पूंजी अंतर्प्रवाह में भारी वृद्धि से रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को ऋण एवं केंद्र के सकल राजकोषीय घाटे के बीच संरचनात्मक संबंधों का विच्छेद हुआ। संरचनात्मक संबंधों के भंग होने से वर्तमान दशक के पूर्वार्ध में मुद्रा सृजन का स्रोत सरकारी क्षेत्र (रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को निवल ऋण) से चलकर बाह्य क्षेत्र (रिज़र्व बैंक की निवल बाह्य आस्तियाँ) में स्थित हो गया है।

## VIII. निष्कर्ष

7.161 ऊपरवर्णित भारत में मुद्रा राजकोषीय संबंधों की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में पिछले सात दशकों में रिज़र्व बैंक के अनुभव से कुछ निष्कर्ष निकालना लाभकारी होगा। प्रथम, राजकोषीय निरपेक्षता से राजकोषीय प्रधानता एवं आगे राजकोषीय सुधार इस प्रकार राजकोषीय नीति के परिवर्तनशील चरणों से उत्पन्न कठिनाइयों से रिज़र्व बैंक को जूझना पड़ा जिसके लिए उसने मौद्रिक नीति की परिचालन प्रक्रिया में समुचित परिवर्तन किए तथा मुद्रा एवं वित्तीय स्थिरता के प्रोत्साहन हेतु संस्थागत व्यवस्था की। इस संदर्भ में सन 1991 के आर्थिक संकट से मौद्रिक राजकोषीय परस्पर संबंधों में राजकोषीय नीति की प्रधानता से उत्पन्न समस्याओं के समाधान की आकस्मिकता पैदा हुई। रिज़र्व बैंक एवं सरकार के मध्य राजकोषीय घाटे के स्वतः मौद्रीकरण की समाप्ति के लिए हुए समझौते से इसमें सुविधा हुई।

7.162 मौद्रिक, मुद्रा राजकोषीय परस्पर संबंधों में आए तनिक सुधार के बावजूद वर्धमान बाज़ार उधार के कारण राजकोषीय प्रधानता बनी रही जिससे रिज़र्व बैंक को सरकारी ऋण की लागत कम रखने के लिए भार के आगमन/निजी खरीद तथा मुक्त बाज़ार परिचालन की समुचित मिश्रित रणनीति अपनाने की आवश्यकता पड़ी।

7.163 तीसरे, अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से मुद्रानीति परिचालन में नई चुनौतियाँ आईं। भारी पूंजी अंतर्प्रवाह से मौद्रिक राजकोषीय परस्पर संबंधों में क्रमिक परिवर्तन हुआ तथा निर्धारित/नियंत्रित विनिमय दर (सापेक्ष मूल्य स्थिरता एवं विश्वसनीय आभासी आधार के लिए), एक स्वतंत्र मौद्रिक नीति (उत्पादन स्थिरता के उद्देश्य से) तथा खुला पूंजी खाता (अधिक दक्षता हेतु) की 'असंभव त्रिमूर्ति' की समस्या का चरणबद्ध ढंग से समाधान किया गया। जहाँ अधिक उपकरण स्वायत्तता से रिज़र्व बैंक के सामर्थ्य में वृद्धि हुई वहीं विनिमय दर समायोजन बाज़ार शक्तियों द्वारा ही किया गया तथा इसमें स्वयंफलित सट्टे बाजी की गतिविधियों के प्रतिकार के लिए कभी - कभी हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ी। परंतु, क्रमबद्ध रूप से पूंजी खाते का उदारीकरण, पूर्व एशियाई संकट से सिद्ध, विवेक संमत साबित हुआ मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति एवं विनिमय बाज़ारों का विनियामक होने के कारण रिज़र्व बैंक समुचित बाज़ार हस्तक्षेप एवं ब्याज दर संकेतों से ब्याज दर एवं विनिमय दर स्थिरता संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों को संतुलित कर सका।

7.164 अंततः, रिज़र्व बैंक सावधानीपूर्वक अपनी ऋण प्रबंध नीति का निर्माण कर सका ताकि सरकारी प्रतिभूतियों की परिपक्वतावधि को लंबा करके सरकारी ऋण पर ब्याज लागत कम की जा सके तथा उसका रोलओवर जोखिम घटाया जा सके। अतः इस संदर्भ में रिज़र्व बैंक बाज़ार में स्थिरता सुनिश्चित करते हुए ऋण प्रबंध चुनौतियों का मुकाबला कर सका।

7.165 यद्यपि विभिन्न चुनौतियों का सामना करने से प्राप्त रिज़र्व बैंक के विविधतापूर्ण अनुभव से उसे भविष्य में नीति निर्माण में

सहायता मिलेगी परंतु कुछ ऐसे विषयों का सज्ञान लेना जरूरी है जो भविष्य में मौद्रिक नीति के मार्ग पर प्रभाव डालेंगे। पहला, भारत में अंतरराष्ट्रीय प्रमाण के संदर्भ में मौद्रिक राजकोषीय परस्पर संबंध में की गई प्रगति की समीक्षा करने की आवश्यकता है। यद्यपि अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों के सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश देशों में केंद्रीय बैंक द्वारा सरकार के निभाव पर औपचारिक सीमा निर्धारित की गई है, तथापि भारतीय संदर्भ में हाल के वर्षों में उदीयमान आर्थिक प्रवृत्तियों, जिनमें पूंजी प्रवाह का खुले बाज़ार परिचालनों द्वारा अवशोषण किया जाता है, के परिणामस्वरूप लोक ऋण के मौद्रीकरण में कमी आई है।

7.166 दूसरे, अंतरराष्ट्रीय अनुभव से यह सर्वसंमत दृष्टिकोण उभर कर सामने आता है कि केंद्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियों की प्राथमिक नीलामी में भाग लेने से बचते हैं। भारत में, राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध के प्रावधानों के अनुसार, रिज़र्व बैंक अप्रैल 2006 से प्राथमिक नीलामी में भाग लेना बंद कर देगा। यह इस तर्क के अनुरूप है कि धन व्यय की शक्ति का मुद्रा सृजन शक्ति से अलगाव होना चाहिए (रेड्डी, 2001)। यद्यपि रिज़र्व बैंक के हटने से मौद्रिक नीति में ज़्यादा परिचालन स्वायत्तता आएगी परंतु रिज़र्व बैंक को ब्याज दर अस्थिरता पर नज़र रखनी पड़ेगी तथा सरकार के उधार कार्यक्रम की सफल पूर्ति के लिए वैकल्पिक वित्तपोषण की व्यवस्था करनी पड़ेगी। वित्त बाज़ारों के वर्धमान समेकन से भविष्य में बांड बाज़ार पर दबावों से अर्थव्यवस्था की समस्त ब्याज दर संरचना पर प्रभाव पड़ेगा (मोहन, 2002)।

7.167 तीसरे, भारत में उच्च लोक ऋण स्तर से, मुद्रा एवं ऋण प्रबंध के अलग-अलग होने का मत शक्तिशाली बनता प्रतीत होता है। अंतरराष्ट्रीय अनुभव यह बताता है कि ऋण प्रबंध एवं मुद्रा के पृथक्करण का कार्यान्वयन ऋण प्रबंध को केंद्रीय बैंक से पृथक करके किया गया जिससे संस्थागत स्मृति एवं विशेषज्ञता संसाधनों के सामान्य समूह का लाभ उठाया जा सकता था। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमेरिका में ट्रेजरी एवं फेडरल रिज़र्व बोर्ड परंपरा से क्रमशः ऋण प्रबंध एवं मौद्रिक नीति के अपने-अपने कार्यों में स्वतंत्र हैं, तथापि उनके बीच समन्वय रहता है। इसके विपरीत, अनेक विकासशील देशों में, केंद्रीय बैंक मुद्रा एवं ऋण प्रबंध परिचालनों दोनों का कार्यभार संभालता है। यद्यपि वह सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक बाज़ार में प्रतियोगी बोलीदाता के रूप में भाग नहीं लेता। मुद्रा एवं ऋण प्रबंध के कार्यों के पृथक्कीकरण की जटिलताओं के मद्देनज़र कम से कम यह आवश्यक बनाया जाना चाहिए कि उनके संबंध एवं लेन - देन में यथासंभव पारदर्शिता का पूर्ण प्रचार हो (रेड्डी, 2001)। कार्यात्मक अलगाव की स्थिति में एक साथ विनिमय दर, मुद्रा एवं ऋण प्रबंध करने से उत्पन्न नीति दुविधाओं के समाधान, जिनका रिज़र्व बैंक तीनों कार्यों को करने वाले प्राधिकारी के रूप में समाधान करता रहा है, के लिए मुद्रा एवं ऋण प्राधिकारियों के मध्य अधिक औपचारिक समन्वय की आवश्यकता पड़ेगी।

7.168 चौथे, राजकोषीय अधिकारियों द्वारा इस बात का सज्ञान, कि राजकोशीय घाटे में कमी से मुद्रास्फीति दबाव में कमी आती है तथा मुद्रानीति का परिचलन आसान होता है, सफल मौद्रिक - राजकोषीय परस्पर संबंधों के लिए महत्वपूर्ण है। अतः,यदि मुद्रास्फीति संभावना का स्तर कम रखा जाए तो एक सक्रिय मौद्रिक नीति निम्न ब्याज दर परिस्थितियों का निर्माण कर सकती है जिससे आर्थिक विकास को सहायता के साथ-साथ लोक ऋण प्रबंध में भी मदद मिलती है।

7.169 पांचवे, राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध संरचना के अधीन किए जा रहे राजकोषीय सुधारों के संदर्भ में यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि सरकार राजकोषीय नियमों के अधीन निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए 'सृजनात्मक लेखांकन' से काम न ले इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि सभी राजकोषीय देयताओं का पारदर्शिता से प्रकटीकरण किया जाए ताकि मुद्रा प्राधिकारी सरकार की दीर्घावधि ऋण आवश्यकताओं का सही आंकलन कर सके तथा तदनुसार अपनी मुद्रानीति बना सके।

7.170 अंत में, परिचालन स्वायत्तता सुनिश्चित करते हुए राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों में समन्वय किया जा सकता है यदि (क) परिवर्तनशील समष्टिगत आर्थिक लक्ष्य, (ख)उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न संभावित विकल्पों के प्रभावों की पहचान तथा, (ग) नीतिगत हस्तक्षेप की अनुपस्थिति में अर्थव्यवस्था की अवस्था के अपने-अपने पूर्वानुमानों का आदान प्रदान एवं प्रयोग में विचार विमर्श से काम लिया जाए (रेड्डी, 2001)। इस संदर्भ में, यद्यपि अल्पावधि चलनिधि पूर्वानुमान प्रतिमान के कार्यान्वयन से भविष्य की चलनिधि की आवश्यकता के पूर्वानुमान में पर्याप्त राजकोषीय मौद्रिक परस्पर समन्वय निश्चित किया गया है तथापि उसको दीर्घावधि की भविष्य कालीन प्रासंगिक व्यवस्थाओं, विशेषकर राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध प्रावधानों से उभरते समष्टि आर्थिक परिदृश्य के मद्देनज़र, उसे उसके अनुकूल बनाने के लिए परिष्कार की आवश्यकता है।